मध्यपाराशरीसहिता

लघु-पाराशरी

(उडुदायप्रदीपः)

* * *

(कुण्डली का फल बतलाने वाले अचूक एवं अकाट्य सिद्धान्त)

* * *

संपादक
स्व. पं. श्री सीताराम झा
ज्यो० आ०
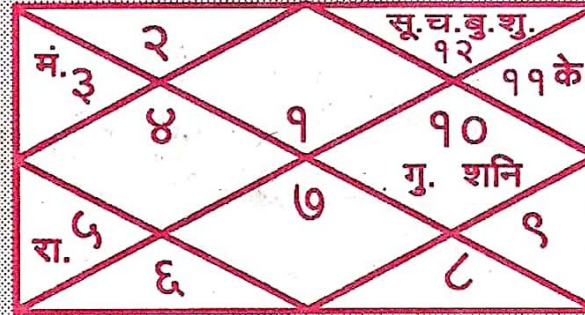
प्रकाशकः
मास्टर खेलाड़ीलाल संकटाप्रसाद
संस्कृत पुस्तकालय
कचौड़ीगली, वाराणसी-1

सम्वत् 2069 मूल्य - 40/-

मध्यपाराशरीसहिता

लघुपाराशरी

[उडुदायप्रदीपः]
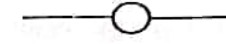
मिथिलादेशान्तर्गत - 'चौंगमा'-निवासि-
वाराणसेय—संस्कृत-विश्वविद्यालयीय-
सम्मानित-प्राध्यापक-ज्यौतिषाचार्य-

स्व० पण्डित-श्री सीताराम-झा-कृतया

तत्त्वार्थप्रकाशिकाख्यया

सयुक्तिकोदाहरण-संस्कृत-भाषाव्याख्यया सहिता

प्रकाशकः

मास्टर खेलाड़ीलाल संकटाप्रसाद

संस्कृत पुस्तकालय

कचौड़ीगली, वाराणसी

[मूल्यम् : 40.00

प्रकाशक
मास्टर खेलाड़ीलाल संकटाप्रसाद
संस्कृत पुस्तकालय
कचौड़ीगली, वाराणसी

अक्षर संयोजन
विश्वनाथ टेक्स्टोग्राफ
वाराणसी

भूमिका

महर्षि पाराशर प्रणीत होराशास्त्र की उपयोगिता के विषय में कुछ भी लिखना दिन में दीपक प्रज्वलित करना है ; क्योंकि इस कलिकाल में प्राणियों के कल्याण का मार्ग बतलाने वाले भगवान् पराशर ही हैं । सब निबन्धकारों ने 'कलौ पाराशरी स्मृतिः' । कलियुग में पराशर मतानुसार ही चलने का आदेश दिया है तथा बड़े-बड़े दैवज्ञों ने भी अनुभव करके 'नक्षत्रायुः कलौ युगे' (कलियुग में पराशर मुनि प्रदर्शित नक्षत्रायुर्दाय के अनुसार ही प्राणियों के जीवन भर का शुभाशुभ फल स्पष्ट रूप से मिलने का प्रमाण) बताया है ।

महर्षि पराशर प्रणीत **होरा शास्त्र** को अति विस्तृत समझ कर, ज्योतिषियों के उपकारार्थ उसमें से सारार्थ लेकर, उनके शिष्यों में से एक सुविज्ञ दैवज्ञ ने ४० श्लोक में **'उडुदाय प्रदीप'** नामक ग्रन्थ लिखा । जिससे सर्व-साधारण जनों का असाधारण उपकार हुआ । आकाशस्थ राशि और ग्रह के बिम्बों में स्वाभाविक शुभत्व और अशुभत्व है । उनमें परस्पर साहचर्यादि तात्कालिक सम्बन्ध से विशिष्ट शुभाशुभत्व हो जाता है, जिसका प्रभाव पृथ्वीस्थित प्राणियों पर भी पूर्ण रूप से पड़ता है । अन्य जातक ग्रन्थों में ग्रहराशियों के स्वाभाविक शुभाशुभत्व से ही शुभाशुभ फल का निर्णय किया गया है । भगवान् पराशर ने अपनी होरा में स्वाभाविक और तात्कालिक दोनों तरह के विवेक से स्पष्ट शुभाशुभत्व समझकर तदनुसार ही फल का आदेश किया है । **'उडुदायप्रदीप'** को पढ़ कर जातक के शुभाशुभ फल समझने में लोग क्षम तो हुए अवश्य, किन्तु वास्तव में **पराशर होरा** का पठन-पाठन बन्द हो गया; फिर वह ग्रन्थ भी दुष्प्राप्य सा हो गया । इधर जब से किसी ने **'बृहत्पाराशर होरा सारांश'** नाम की एक संग्रहीत पुस्तक प्रकाशित किया तब से 'उडुदाय प्रदीप' का नाम लोगों ने **'लघुपाराशरी'** रख दिया है । इस ग्रन्थ की अनेक टीकाएँ हो चुकी हैं, परञ्च किसी में भी आद्योपान्त अर्थ-सङ्गतता मेरी दृष्टि में नहीं आयी । अतः सकल साधारण के सुख-बोधार्थ मैंने **'तत्त्वार्थ प्रकाशिका'** नामक टीका

लिखकर प्रकाशित करवाया जिसका प्रथम संसकरण उपयोगी होने के कारण हाथोंहाथ बिक गया।

'बृहत्' और 'लघु' पाराशरी नामक ग्रन्थ देखकर किसी गणक ने 'मध्यपाराशरी' नाम से एक ग्रन्थ लिखा। जिसमें न जाने सम्पादक या लेखक आदि के प्रमाद से बहुत जगह अशुद्ध, अयुक्त तथा पुनरुक्त पाठ दृष्टिगोचर हुए। जो प्रकाशित ग्रन्थ मूल या भाषाटीका रूप में मिलते हैं उनमें भी मूल का संशोधन करना तो दूर रहा, मूलस्थित शुद्ध शब्द का भी अशुद्ध और असङ्गत अर्थ टीकाकारों ने लिखा है जो अबोध विद्यार्थियों के लिए लाभ के स्थान में हानिकारक हो सकता है। जैसे—मृगाधिप का अर्थ मकर, गुरु भाव का अर्थ बृहस्पति; मानभाव का अर्थ नवम भाव, वृष राशि में बैठकर तुला के नवांश में हो इत्यादि **असङ्गत अर्थ** है (क्योंकि वृषराशि में तुला या वृश्चिक का नवांश होता ही नहीं)। ऐसा अनर्थ देखकर विद्यार्थियों से प्रार्थित होने पर मैंने प्राचीन हस्तलिखित पुस्तकों के आधार मूल ग्रन्थ की अशुद्धियों का संशोधन करके यथामति सोदाहरण भाषा टीका लिखकर काशी के सुप्रसिद्ध प्रकाशक **मास्टर खेलाड़ीलाल** के पुत्र स्व० श्रीयुत बाबू जगन्नाथ प्रसाद जी यादव को प्रकाशनार्थ समर्पण कर दिया। जिन्होंने अपने द्रव्य से विद्यार्थियों के उपकारार्थ यत्नपूर्वक लघुपाराशरी के इस संस्करण में उसके साथ ही इसे भी प्रकाशित किया है। यदि इससे जनता का कुछ भी लाभ हुआ तो हम अपने परिश्रम को सफल समझेंगे। सहृदय सुजन समाज से सादर निवेदन है कि इसमें मनुष्यदोषवश या यन्त्रादि द्वारा जो कुछ अशुद्धि या त्रुटि रह गयी हो उसे सूचित करें तो हम अग्रिम संस्करण में संशोधन कर उनके चिर कृतज्ञ बनेंगे। इत्यलमधिकेन त्रिवेकित्रर्गेषु।

स्खलनं गच्छतः क्वापि भवत्येव प्रमादतः।
हसन्ति दुर्जनास्तत्र समादधति सज्जनाः॥ इति शम्।

श्रीसीतारामझा, चौगमा।

❀ श्रीः ❀

* लघुपाराशरी *

(उडुदायप्रदीपः)

श्रीसूर्यं प्रणिपत्यादौ स्फुटां भाषार्थसंयुताम्।
उडुदायप्रदीपस्य व्याख्यां सोदाहृतिं ब्रुवे॥

अथ ग्रन्थकारकृतमङ्गलाचरणम्—

सिद्धान्तमौपनिषदं शुद्धान्तं परमेष्ठिनः।
शोणाधरं महः किञ्चिद्वीणाधरमुपास्महे॥ १॥

सं०—सिद्धान्तं (वाद-प्रतिवादाभ्यां सिद्धो निष्पन्नः अन्तो निश्चयो यस्य तत्)—"सिद्धो व्यासादिके देवयोनौ निष्पन्नमुक्तयोः""अन्तः-स्वरूपे निकटे प्रान्ते निश्चयनाशयोः" इति च हेमचन्द्रकोषः, औपनिषदं (वेदान्तप्रतिपाद्यं)—"भवेदुपनिषद् धर्मे वेदान्ते विजने स्त्रियाम्" इति मेदिनी, परमेष्ठिनो (ब्रह्मणः) शुद्धान्तं (स्त्रीरूपं असर्वगोचरं)—"कक्षान्तरेऽपि शुद्धान्तो नृपस्यासर्वगोचरे" इत्यमरः (अथवा शुद्धः अन्तः स्वरूपं यस्य तत् शुद्धान्तं) शोणाधरं (शोणो रक्तोत्पलवर्णोऽधरो यस्य तत्) वीणाधरं किञ्चिन्महः (तेजोविशेषं) 'वयं' उपास्महे (वाग्देवतां सरस्वतीं भजाम इत्यर्थः) अत्र 'वय' मित्यग्रिमश्लोके-नाऽन्वयः॥ १॥

भा०—वाद-प्रतिवाद से सिद्ध है अन्त (निश्चय) जिसका ऐसे वेदान्त में प्रतिपादित ब्रह्मा के अन्तःपुर में रहने वाले अरुण वर्ण अधरवाले वीणा को धारण किए हुए किसी तेजविशेष की हम उपासना करते हैं (अर्थात् श्रीसरस्वतीजी के स्वरूप का ध्यान करते हैं)॥ १ ॥

अथ वस्तुनिर्देशः—

वयं पाराशरीं होरामनुसृत्य यथामति ।
उडुदायप्रदीपाख्यं कुर्म्मो दैवविदां मुदे ॥ २ ॥

सं०—वयं यथामति मतिमनतिक्रम्य पाराशरीं पराशरप्रणीतां होरां अनुसृत्य 'तदनुसारं' दैवविदां दैवं प्राक्तनकर्म विदन्तीति दैवविदस्तेषां ज्योतिर्विदां मुदे प्रमोदाय 'उडुदायप्रदीपाख्यं' उडुदायेषु नक्षत्रदशाफलेषु प्रदीप इवेति उडुदायप्रदीप आख्या यस्य तं 'उडुदायप्रदीप' नामकं ग्रन्थं कुर्मः॥ २ ॥

भा०—हम अपनी बुद्धि के अनुसार ज्योतिषियों के प्रसन्नतार्थ महर्षि पराशरप्रणीत होराशास्त्र के अनुसार "उडुदायप्रदीप" नामक ग्रन्थ को बनाते हैं ॥ २ ॥

अथ फलादेशार्थमुपदिशति—

फलानि नक्षत्रदशाप्रकारेण विवृण्महे ।
दशा विंशोत्तरी चाऽत्र ग्राह्या नाऽष्टोत्तरी मता ॥ ३ ॥

सं०—अत्र नक्षत्रदशाप्रकारेण फलानि विवृण्महे नक्षत्रदशावशादेव शुभाऽशुभफलानि प्रतिपादयामः । अत्र फलकथने विंशोत्तरीदशा ग्राह्या । अष्टोत्तरी दशा न मता, न ग्राह्येत्यर्थः ॥ ३ ॥

भा०—हम इसमें नक्षत्रदशा के अनुसार ही शुभ अशुभ फल कहते हैं । इस ग्रन्थानुसार फल कहने में विंशोत्तरी दशा ही ग्रहण करना चाहिये । अष्टोत्तरी दशा यहाँ ग्राह्य नहीं है ॥ ३ ॥

विशेष—बालकों के उपकारार्थ सोदाहरण विंशोत्तरी दशाज्ञान प्रकार—

जन्म नक्षत्र से जन्मकालिक दशा जानने का चक्र—

नक्षत्र	कृ. उ.फा उ.षा	रो. ह. श्रव	मृ. चि. ध.	आ. स्वा. श.	पुन. वि पू.भा.	पुष्य. अनु. उ.भा	आश्ले ज्ये. रे.	म. मू. अश्वि	पू.फा. पू.षा. भर
दशापति.	सूर्य	चन्द्र.	मङ्ग.	राहु.	गुरु.	शनि.	बुध.	केतु.	शुक्र
वर्ष	६	१०	७	१८	१६	१९	१७	७	२०

नक्षत्रों से दशापति और उनके वर्षों के ज्ञानार्थ पद्य—

कृत्तिकातः समारभ्य त्रिरावृत्य दशाधिपाः ।
सूर्येन्दु-कुज-राह्विज्य-शनि-ज्ञ-शिखि-भार्गवाः ॥
दशा समाः क्रमादेषां षड् दशाऽश्वा गजेन्दवः ।
नृपाला नवचन्द्राश्च नगचन्द्रा नगा नखाः ॥

अर्थ—कृत्तिका से आरम्भ कर तीन आवृत्ति करके नौ, नौ नक्षत्रों के क्रम से-सूर्य, चन्द्र, मङ्गल, राहु, बृहस्पति, शनि, बुध, केतु, शुक्र ये दशाधिपति होते हैं । तथा क्रम से इन ग्रहों के ६, १०, ७, १८ १६, १९, १७, २० वर्ष दशामान हैं जो उपरोक्त चक्र में स्पष्ट हैं ।

जन्मकालिक वर्तमान दशा के भुक्त और भोग्य वर्षानयन प्रकार—

दशामानं भयातघ्नं भभोगेन हृतं फलम् ।
भुक्तं वर्षादिकं ज्ञेयं भोग्यं भोग्यवशात् तथा ॥

अर्थ-जिस ग्रह की दशा में जन्म हो उस ग्रह की दशावर्ष संख्या को भयात से गुनाकर गुणनफल में भभोग के भाग देने से लब्धि वर्षादि दशा का भुक्तमान होता है, उसको दशा वर्ष की संख्या में घटाने से (जन्मकाल से आगे) भोग्य होता है ।

अथवा—भयात को भभोग में घटाने से भभोग्य होता है। उससे दशावर्ष संख्या को गुनाकर गुणनफल में भभोग के भाग देने से लब्ध वर्षादि वर्तमान दशा का भोग्य (जन्मकाल से आगे का मान) होता है।

इसकी युक्ति (उपपत्ति)—यदि सम्पूर्ण भभोगघटी में ग्रह की दशासंख्या होती है तो भयात घटी में क्या? इस प्रकार त्रैराशिक से

$$\text{भुक्तवर्षादि} = \frac{\text{दशासंख्या} \times \text{भयातघ}}{\text{भभोगघ}}$$

इसी प्रकार भभोग्य घटीके अनुपातसे

$$\text{भोग्यवर्षादि} = \frac{\text{दशावर्ष सं} \times \text{भभोग्यघ}}{\text{भभोगघ}}$$ ।

*उदाहरण—शाके १८४८ संवत् १९८३ माघशुक्ल एकादशी शनिवार में किसी का जन्म है। उस समय मृगशिरा नक्षत्र के भयात ५८।१५ ॥ भभोग ५९।३० ॥ भभोग्य १।१५ स्पष्ट सूर्य=९।२९।२०।१३ है तो उपरोक्त पद्यानुसार मृगशिरा नक्षत्र में मङ्गल दशाधिप हुआ। इसलिये मङ्गल की दशावर्ष संख्या ७ को भयात ५८।१५ के एकजातीय ३४९५ से गुनाकर २४४६५ इसमें भभोग ५९।३० के एकजातीय ३५७० से भाग देने से लब्धि वर्षादि, ६।१०।७।३।३२ दशा का भुक्त हुआ, इसको दशावर्ष संख्या ७ में घटाने से दशा का भोग्य वर्षादि = ०।१। २२।५६।२८ ॥

अथवा—भभोग्य १।१५ के एकजातीय ७५ पल से दशावर्ष संख्या ७ को गुना करने से ५२५ इनमें भभोग ५९।३० के एकजातीय (पल) ३५७० से भाग† देने से लब्धि वर्षादि ०। ।२२।५६।२८ दशा का भोग्य वर्षतुल्य ही आया।

---

* 'लग्नप्रदीप' के प्रथम प्रकाश में भयात आदि बनाना देखो।

† भाग देने में वर्षशेष को १२ से गुना कर मास, मास शेष को ३० से गुना कर दिन और दिन शेष को ६० से गुना कर घटी बनाकर भाग देने से मासादि लब्धि होती है।

अतः विंशोत्तरी महादशा चक्र—

ग्रह	मं	रा.	गु.	श.	बु.	के	शु	सू.	च.
वर्ष	०	१८	१६	१९	१७	७	२०	६	१०
मा.	१								
दि	२२								
घ.	५६								
प.	२८								
शाके १८४८	१८४८	१८६६	१८८२	१९०१	१५१८	१९२५	१९४५	१९५१	१९६१
सूर्य ९	११	११	११	११	११	११	११	११	११
२९	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२
२०	१६	१६	१६	१६	१६	१६	१६	१६	१६
१३	४'	४१	४१	४१	४१	४१	४१	४१	४१

अन्तर्दशा बनाने का सरल प्रकार

दशाब्दाः स्वस्वमानेन हताः खार्कोद्धृताः फलम्।
अन्तर्दशा भवेदेव प्रत्यन्तर-दशादयः॥

अर्थ—(जिस ग्रह की महादशा में प्रत्येक ग्रहों की अन्तर्दशा जानना हो) उस ग्रह की दशावर्ष संख्या को अलग-अलग प्रत्येक ग्रह की दशा संख्या से गुना कर गुणनफल में १२० के भाग देने से लब्धि वर्षादि तत्तद्ग्रह की अन्तर्दशा का मान होता है। इस प्रकार अन्तर्दशा पर से प्रत्यन्तर्दशा तथा प्रत्यन्तर पर से विदशा, विदशा पर से उपदशा का आनयन होता है।

इसकी उपपत्ति (युक्ति) यह है कि—प्रत्येक ग्रह की दशा में ९ नव ग्रहों की अन्तर्दशा होती है, वह भी अपने-अपने वर्ष के अनुसार होनी चाहिए, इसलिये सब ग्रह के दशावर्षयोग (१२०) में इष्ट दशामान तो अलग-अलग ग्रहों को वर्षसंख्या में क्या ? इस अनुपात से इष्टदशा में

अन्तर्दशा मान $= \dfrac{\text{इष्टदशा} \times \text{ग्रहदशा}}{१२०}$ सिद्ध होता है।

उदाहरण—रवि की दशा में रव्यादि सब ग्रहों की अन्तर्दशा साधन करना है तो रवि की दशा वर्ष संख्या ६ को रवि को वर्ष संख्या ६ से गुनाकर गुणनफल ३६ में १२० के भाग देने से वर्ष = ०। वर्ष शेष ३६ को १२ से गुना कर गुणनफल ३६ × १२ = (४३२) में १२० के भाग देने से लब्ध मास = ३। मास शेष ७२ को ३० से गुनाकर २१६० इसमें १२० के भाग देने से लब्धि दिन १८। इस प्रकार रवि की दशा में रवि की अन्तर्दशा वर्षादि ०।३।१८।०।०॥

इसी प्रकार रवि की दशा को चन्द्रादि ग्रह की दशा संख्या से गुनाकर १२० के भाग देकर वर्षादि अन्तर्दशामान होता है। जो बालकों के उपकारार्थ आगे चक्र में स्पष्ट है।

अथवा—सब ग्रह की दशा के योग १२० वर्ष दशा मान तो १ वर्ष में क्या ? इस अनुपात से एक वर्ष सम्बन्वी अन्तर्दशा का ध्रुवक

$= \dfrac{\text{दशासंख्या} \times १}{१२०}$ वर्षादि हुआ। इसको एक वर्ष सम्बन्धी दिन ३६० से गुना करने से दिनादि अन्तर्दशा ध्रुवक = दशासंख्या × $\frac{३६०}{१२०}$ = दशासंख्या × $\frac{३}{१}$, इससे सिद्ध हुआ कि दशा वर्षसंख्या को ३ से गुना करने से १ वर्ष सम्बन्धी अन्तर्दशामान दिनादि होता है, उसको ग्रहों की अपनी-अपनी दशा वर्षसंख्या से गुना करने से अन्तर्दशा का प्रमाण होगा।

अतः अभ्यासार्थ श्लोक—

त्रिघ्नं दशासमामानं दिनाद्यं ध्रुवकं स्मृतम्।

निघ्नं स्वस्वदशाब्दैस्तद् भवेदन्तर्दशामितिः॥

उदाहरण—जैसे सूर्य दशा वर्ष संख्या ६ को ३ से गुणा करने से ध्रुव दिन = १८। इसकी सूर्यकी दशा संख्या से गुणा करने से सूर्य की अन्तर्दशा दिनादि १०८ इसमें ३० के भाग देकर मासादि ३।१८। मास के स्थान में १२ से अधिक हो तो १२ के भाग देकर वर्षादि बना लेना। यहाँ सूर्य की दशा में सूर्य की अन्तर्दशा के मास १२ से कम है अतः सूर्य की दशा में सूर्य की अन्तर्दशा वर्षादि $\dfrac{\text{व. मा. दि. घ. प.}}{०।३।१८।०।०।}$ यह पूर्व विधि से बनाये हुए के तुल्य ही हुआ।

इस प्रकार सूर्य की ध्रुवा १८ को चन्द्र की दशावर्षसंख्या १० से गुणा कर दिनादि चन्द्र की अन्तर्दशा १८० इसमें ३० के भाग देकर मासादि ६०।०।० अतः सूर्य की दशा में चन्द्र की अन्तर्दशा वर्षादि ०।६।०।०।० एवं ध्रुवक को मङ्गलादिक की दशा संख्या से गुणा कर अन्तर्दशा मान सिद्ध होते हैं। जो नीचे चक्र में स्पष्ट है :

सूर्य की दशा में सूर्यादि नवग्रहों की अन्तर्दशा—

ध्रुव	ग्रह	सू	च.	मं.	रा.	गु.	श.	बु.	के.	शु.
०	व.	०	०	०	०	०	०	०	०	१
०	मा.	३	६	४	१०	९	११	१०	४	
१८	दि.	१८	०	६	२४	१८	१२	६	६	०

उक्त रीति के अनुसार चन्द्रमा की दशा १० को ३ से गुणाकर दिनात्मक ध्रुव = ३० इसमें ३० से भाग देने से १ मास इसको अपनी-अपनी दशा की संख्या से गुणा करने से—

चन्द्र की दशा में चन्द्र आदि ग्रहों की अन्तर्दशा—

ध्रुव	ग्र.	चं.	म.	रा.	गु.	श.	बु.	के.	शु.	सू.
०	व.	०	०	१	१	१	१	०	१	०
१	मा.	१०	७	६	४	७	५	७	८	६

एवं मंगल की दशा में मंगलादि की ग्रहों की अन्तर्दशा—

ध्रुव	ग्र.	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	केः	शु.	सू.	चं.
०	व.	०	१	०	१	०	०	१	०	०
०	मा.	४	०	११	१	११	४	२	४	७
२१	दि.	२७	१८	६	९	२७	२७	०	६	०

राहु की दशा में राहु आदि की वर्षादि अन्तर्दशा—

ध्रुव	रा	बृ	श	बु	के	शु	सू	च	म	
०	२	२	२	२	१	३	०	१	१	व
१	८	४	१०	६	०	०	१०	६	०	मा
२४	१२	२४	६	१८	१८	०	२४	०	१८	दि

बृहस्पति की दशा में अन्तर्दशा

ध्रुव	बृ	श	बु	के	श	सू	चं	मं	रा	
०	२	२	२	०	२	०	१	०	२	व
१	१	६	३	११	८	९	४	११	४	मा.
२१	१८	१२	६	६	०	१८	०	६	२४	द.

शनि की दशा में अन्तर्दशा

ध्रुव		बु	के	शु	सू	चं	म	रा	वृ	
०	३	२	१	३	०	१	१	२	२	व
१	०	८	१	२	११	७	१	१०	६	सा
२७	३	९	९	०	१२	०	१	६	१६	दि.

वुध की दशा में अन्तर्दशा

ध्रुव	बु	के	शु	सू	च	मं	रा	वृ	श	
०	२	०	२	०	१	०	२	२	२	व
१	४	११	१०	१०	५	११	६	३	८	मा.
१८	२१	२७	०	६	०	२७	१८	६	९	दि.

केतु की दशा में अन्तर्दशा

ध्रु	के	शु	सू	चं	मं	रा	बृ	श	बु	
०	०	१	०	०	०	१	०	१	०	व.
०	४	२	४	७	४	०	११	१	११	मा.
२१	२७	०	६	०	२७	१८	६	९	२७	दि.

शुक्र की दशा में अन्तर्दशा

ध्रु	शु	सू	चं	मं	रा	बृ	श	बु	के	
०	३	१	१	१	३	२	३	२	१	व.
२	४	०	८	२	०	८	२	१०	२	मा.

सूर्य की महादशा में सूर्य की अन्तर्दशा में मासादि प्रत्यन्तर्दशा

ध्रु	सू	चं	म	रा	बृ	श	बु	के	शु	
०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	मा.
०	५	९	६	१६	१४	१७	१५	६	१८	द्रि.
५४	२४	०	३८	१२	२४	६	१८	१८	०	घ.

चन्द्रमा की अन्तर्दशा में प्रत्यग्तर्दशा

ध्रु	चं	मं	रा	बृ	श	बु	के	शु	रा	
०	०	०	०	०	०	०	०	१	०	मा.
१	१५	१०	२७	२४	२८	२५	१०	०	९	दि.
३०	०	३०	०	०	३०	३०	३०	०	०	घ.

मङ्गल की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर

ध्रु	म	रा	बृ	श	बु	के	शु	सू	चं	
०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	मा.
१	७	१८	१६	१९	१७	७	२१	६	१०	दि.
३	२१	५४	४८	५७	५१	२१	०	१८	३०	व.

राहु की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर

ध्रु	रा	बृ	श	बु	के	शु	सू	च	म	
०	१	१	१	१	०	१	०	०	०	मा.
२	१८	१३	२१	१५	१८	२४	१६	२७	१८	दिं.
४२	३६	१२	१८	५४	५४	०	१२	०	५४	घ.

गुरु की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर

ध्रु	बृ	श	बु	के	शु	सू	चं	म	रा	
०	१	१	१	०	१	०	०	०	१	म.
२	८	१५	१०	१६	१८	१४	२४	१६	१३	दि.
२४	२४	३६	४८	४८	०	२४	०	४८	१२	घ.

शनि की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर

ध्रु	श	बु	के	शु	सू	चं	मं	रा	बृ	
०	१	१	०	[illegible]	०	०	०	१	१	मा.
२	२४	१८	१९	२७	१७	२८	१९	२१	१५	दि.
५१	९	२७	५७	०	६	३०	५७	१८	३६	घ.

बुध की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर

ध्रु	बु	के	शु	सू	चं	मं	रा	बृ	श	
०	१	०	१	०	[illegible]	०	१	१	१	मा.
२	१३	१७	२१	१५	२५	१७	१५	१०	१८	दि.
३३	२१	५१	०	१८	३०	५[illegible]	५४	४८	२७	घ.

केतु की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर

ध्रु	के	श	सू	च	म	रा	बृ	श	बु	
०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	मा.
१	७	२१	६	१०	७	१८	१६	१९	१७	दि.
६३	२१	०	१८	३०	२१	५४	४८	५७	५१	घ.

शुक्र की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर दशा

ध्रु	शु	सू	चं	म	रा	बृ	श	बु	के	
०	२	०	१	०	१	१	१	१	०	दि.
३	०	१८	०	२१	२४	१८	२७	२१	२१	मा.

चन्द्रमा की दशा चन्द्रमा की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर

ध्रु	च	मं	रा	बृ	श	बु	के	शु	र	
०	०	०	१	१	१	०	०	१	०	मा.
[illegible]	२५	१७	१५	१०	१७	१२	१७	०	१५	दि.
३०	०	३०	०	०	३०	३०	३०	०	०	घ.

मङ्गल की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर

ध्रु०	मं	रा	बृ	श	बु	के	शु	सू	चं	
०	०	१	०	१	०	०	१	०	०	मा.
१	१२	१	२८	३	२९	१२	५	१०	१७	दि
४५	१५	३०	०	१५	४५	१५	०	३०	३०	घ

राहु की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर

ध्रु	रा०	बृ	श	बु	के	शु	र	च	मं	
०	२	२	२	२	१	३	७	१	१	मा.
४	२१	१२	२५	१६	१	०	२७	१५	१	दि
३०	०	०	३०	३०	३०	०	०	०	३०	घ

बृहस्पति की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर

	बृ	श	बु	के	शु	सू	चं	मं	रा	
०	२	२	२	०	२	०	१	०	२	मा०
४	४	१६	८	२८	२०	२४	१०	२८	[illegible]	दि.

शनि की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर

ध्र	श	बु	के	शु	सू	चं	मं	रा	बृ	
०	३	२	२	१	३	१	१	[illegible]	२	मा.
४	०	२०	३	५	२८	१७	३	२५	१६	दि
४१	१५	४५	१५	०	३०	३०	१५	३०	०	घ.

बुध की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर

ध्रु	बु	के	शु	र	च	मं	रा	बृ	श.	
०	२	०	२	०	१	०	२	२	२	मा.
४	१२	२९	२५	२५	१२	२९	१६	८	२०	दि.
१५	१५	४५	०	३०	३०	४५	३०	०	४५	घ

केतु की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर

ध्रु	के	शु	सू	च	म	रा	बृ	श	बु	
०	०	१	०	०	०	१	०	१	०	मा.
[illegible]	१२	५	१०	१७	१२	१	२८	३	२९	घ्रि.
[illegible]	१५	०	३०	३०	१५	३०	०	१५	४५	द

शुक्र की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर

ध्रु	शु	सू	च	म	रा	बृ	श	बु	के	
०	३	१	१	१	३	२	३	२	१	मा
५	१०	०	२०	५	०	२०	५	२५	५	दि.

सूर्य की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर

ध्रु	सू	चं	मं	रा	बृ	श	बु	के	शु	
०	०	०	०	०	०	०	०	०	१	मा.
१	९	१५	१०	२७	२४	२८	२५	१०	०	दि.
२०	०	०	३०	०	०	३०	३०	३०	०	घ

मंगल की दशा में मङ्गल की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर

ध्रु	मं	रा	बृ	श	बु	के	शु	सू	चं	
०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	मा०
१	८	२२	१९	२३	२०	८	२४	७	१२	दि.
१३	३४	३	३६	१६	४९	३४	३०	२१	१५	घ
३०	३०	०	०	३०	३०	३०	०			पं.

राहु की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर

ध्रु	रा	बृ	श	बु	के	शु	सू	चं	म	
३	१	१	१	१	०	२	०	१	०	मा.
९	२६	२०	२९	२३	२२	३	१८	१	२२	दि.
	४२	२४	५१	३३	३	०	५४	३०	३	घ

गुरु की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर

०	बृ	श	बु	के	शु	सू	चं	मं	रा	
२	१	१	१	०	१	०	०	०	१	मा.
४८	१४	२३	१७	१९	२६	१६	२८	१९	२०	दि.
	४८	१२	३६	३६	०	४८	०	३६	२४	घ

शनि की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर

ध्रु	श	बु	के	शु	सू	चं	मं	रा	बृ	
०	२	१	०	२	०	१	०	१	१	मा.
३	३	२६	२३	६	१९	३	२३	२९	२३	दि.
१९	१०	३१	१६	३०	५७	१५	१६	५१	१२	घ.
३०	३०	३०	३०	०	०	०	३०	०	०	प.

बुध की अ·तर्दशा में प्रत्य तर

ध्रु	बु	के	शु	सू	चं	मं	रा	वु	श	
०	१	०	१	०	०	०	१	१	१	मा.
२	२०	०	२९	१७	२९	२०	२३	१७	२६	दि.
५८	३४	४९	३०	५१	४५	४९	३३	३६	३१	घ.
३०	३०	३०	०	०	०	३०	०	०	३०	प.

मङ्गल की दशा—केतु के अन्तर में प्रत्यन्तर

ध्रु	के	शु	सू	चं	मं	रा	बृ	श	बु	
०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	मा.
१	८	२४	७	१२	८	२२	१९	२३	२०	दि.
१३	३४	३०	२१	१५	३४	३	३६	१६	४९	घ.
३०	३०	०	०	०	३०	०	०	३०	३०	प.

मङ्गल की दशा—केतु के अन्तर में प्रत्यन्तर

ध्रु	शु	सू	चं	मं	रा	बृ	श	बु	के	
०	२	०	१	०	२	१	२	१	०	मा.
३	१०	२१	५	२४	३	२६	६	२९	२४	दि.
३०	०	०	०	३०	०	०	३०	३०	०	घ.

मङ्गल की दशा—सूर्य के अन्तर में प्रत्यन्तर

ध्रु	सू	त्रं	म	रा	बृ	शु	बु	के	शु	
०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	मा.
१	६	१०	७	१८	१६	१९	१७	७	२१	दि.
३	१८	३०	२१	५४	४८	५७	५१	२१	०	घ.

मङ्गल की दशा—चन्द्रमा के अन्तर में प्रत्यन्तर

ध्रु	चं	मं	रा	बृ	श	बु	के	शु	सू	
०	०	०	१	०	१	०	०	१	०	मा.
१	१७	१२	१	२०	३	२९	१२	५	१०	दि.
४५	३०	१५	३०	०	१५	४५	१५	०	३०	घ.

राहु की महादशा और राहु की ही अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर

ध्रु	रा	वृ	श	वु	के	श	सू	चं	मं	
०	४	४	५	४	१	५	१	२	१	मा.
८	२५	९	३	१७	२६	१२	१८	२१	२६	दि.
६	४८	३६	५४	४२	४२	०	३६	०	४८	घ.

राहु की दशा वृहस्पति के अन्तर में प्रत्यन्तर

ध्रु	वृ	श	वु	के	श	सू	चं	मं	रा	
०	३	४	४	१	४	१	२	१	४	मा.
७	२५	१६	२	१०	२४	१३	१२	२०	९	द.
१२	१२	४८	२४	२४	०	१२	०	२४	३६	घ.

राहुदशा—शनि के अन्तर में प्रत्यन्तर

ध्रु	श	वु	के	शु	सू	च	म	रा	वृ	
०	५	४	१	५	१	२	१	५	४	मा.
८	१२	२५	२९	२१	२१	२५	२९	३	१६	दि.
३३	२७	२१	५१	०	१८	३०	५१	५४	४८	घ.

राहु दशा—वुध के अन्तर में प्रत्यन्तर

ध्रु	वु	के	शु	सू	च	म	रा	वृ	श	
०	४	१	५	१	२	१	४	४	४	मा.
७	१०	२३	३	१५	१६	२३	१७	२	२५	दि.
३९	३	३३	०	५४	३०	३३	४२	२४	२१	घ.

राहु दशा—केतु के अन्तर मे प्रत्यन्तर

ध्रु	के	शु	सू	चं	म	रा	वृ	श	वु	
०	०	२	०	१	०	१	२	१	१	मा.
३	२२	३	१८	१	२२	२६		२९	२३	दि.
९	३	०	५४	३०	३	४२	२४	५१	३३	घ.

राहु दशा शुक्र के अन्तर में प्रत्यन्तर

ध्रु	शु	सू	चं	म	रा	वृ	श	वु	के	
०	६	१	३	२	५	४	५	५	२	मा.
९	०	२९	०	३	१२	२१	२१	३	३	दि.

राहु दशा—सूर्य की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर

ध्रु	सू	चं	म	रा	वृ	श	वु	के	शु	
०	०	०	०	१	१	१	१	०	१	मा.
२	१६	२७	१८	१८	१३	२१	१५	१८	२४	दि.
४२	२	०	५४	३६	७	१८	५४	५४	०	घ.

राहु की दशा—चन्द्रमा के अन्तर में प्रत्यन्तर

ध्रु	चं	मं	रा	बृ	श	बु	के	शु	र	
०	१	१	२	२	२	२	१	३	०	मा.
४	१५	१	२१	१२	२५	१६	१	०	२७	दि.
३०	०	३०	०	६	३०	३०	३०	०	०	घ.

राहु की दशा—मङ्गल की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर

ध्रु	मं	रा	वृ	श	बु	के	शु	सू	च	
०	०	१	१	१	१	०	२	०	१	मा.
३	२२	२६	२०	२९	३	२२	३	८	१	दि.
९	३	४२	२४	५१	२३	३	०	५४	३०	घ.

बृहस्पति की दशा—बृहस्पति के अन्तर में प्रत्यन्तर

ध्रु	बृ	श	बृ	के	शु	सू	च	मं	रा	
३	३	४	३	१	४	१	२	१	३	मा.
६	१२	१	१८	१४	८	८	४	१४	२५	दि.
५४	२४	३६	४८	४८	०	२४	०	४८	१२	घ.

बृहस्पति की दशा—शनि की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर

ध्रु	श	बृ	के	शु	सू	चं	मं	रा	बु	
०	४	४	१	५	१	०	१	४	४	मा.
७	२४	९	२३	२	१५	१६	२३	१६	१	दि.
३६	२४	१२	१२	०	३६	०	१२	४८	३६	घ.

बृहस्पति दशा—बुध के अन्तर में प्रत्यन्तर

ध्रु	बृ	के	शु	सू	चं	मं	रा	बु	श	
०	३	१	४	१	२	१	४	३	४	मा.
६	२५	१७	१६	१०	८	१७	२	१८	९	दि.
४८	०	३६	०	४८	०	३६	२४	४८	१२	घ.

गु. द केतु के अन्तर में प्रत्यन्तर

ध्रु	के	शु	सू	चं	म	रा	वृ	श	वु	
०	१	१	०	०	०	१	१	१	१	मा.
२	१०	२६	१६	२८	१९	२०	१४	२३	१७	द.
४८	३६	०	४८	०	३६	२४	४८	१२	३६	घ

गु. द. शुक्र अन्तर में प्रत्यन्तर

ध्रु	शु	सू	च	मं	रा	वृ	श	वु	के	
०	५	१	२	१	४	४	५	१	०	मा.
८	१०	१८	२०	२६	२४	८	२	१६	२६	दि

गु. द. सूर्य के अन्तर में प्रत्यन्तर

ध्रु	सू	च	म	रा	वृ	श	वु	के	शु	
०	०	०	०	१	१	१	१	०	१	मा
२	१४	२४	१६	१३	८	१५	१०	१६	१८	दि.
२४	२४	०	४८	१२	२४	३६	४८	४८	०	घ.

गु. द. चन्द्रमा के अन्तर में प्रत्यन्तर

ध्रु	चं	मं	रा	बृ	श	बु	के	शु	सू	
०	१	०	२	२	२	२	०	२	०	मा.
४	१०	२८	१२	४	१६	८	२८	२०	५४	दि.

गु. द. मङ्गल के अन्तर में प्रत्यन्तर

ध्रु	मं	रा	वृ	श	वु	के	शु	सू	चं	
०	०	१	१	१	१	०	१	०	०	मा.
२	१८	२०	१४	२३	१७	१९	२६	१६	२८	दि.
८	३६	२४	४८	१२	३६	३६	०	४८	०	घ.

गु. द. राहु की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर

ध्रु	रा	वृ	श	बु	के	शु	सू	चं	म	
०	४	३	४	४	१	४	१	२	१	मा.
१७	९	२९	१६	२	२०	२४	१३	१२	२०	दि.
१२	३६	१२	४८	२४	२४	०	१२	०	२४	घ

शनि की दशा और शनि की ही अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर

ध्रु	श	वु	के	शु	सू	चं	मं	रा	वृ	
०	५	५	२	६	१	३	२	५	४	मा.
९	२१	३	३	०	२४	०	३	१२	२४	दि.
१	२८	२५	१०	३०	९	१५	१०	२७	२४	घ.
३०	३०	३०	३०	०	०	०	३०	०	०	प.

श. द. वुध के अन्तर में प्रत्यन्तर

ध्रु	बु	के	शु	सू	च	म	रा	वृ	श	
०	४	१	५	१	२	१	४	४	५	मा.
८	१७	२६	११	१८	२०	२६	२५	९	३	दि.
४	१६	३१	३०	७	४५	३१	२१	१२	२५	घ.
३०	३०	३०	०	०	०	३०	०	०	३०	प.

श. द. केतु के अन्तर में प्रत्यन्तर

ध्रु	के	शु	सू	चं	म	रा	वृ	श	बु	
०	०	२	०	१	०	१	१	२	१	मा.
१३	२३	६	१९	३	२३	२९	२३	३	२६	दि.
३९	१६	३०	५७	१५	१६	५१	१२	१०	३१	घ.
०	३०	०	०	०	३०	०	०	३०	३०	प.

श. द. शुक्र के अन्तर में प्रत्यन्तर

ध्रु	शु	सू	च	मं	रा	बृ	श	वु	के	
०	६	१	३	२	५	५	६	५	२	मा.
९	१०	२७	५	६	२१	२	०	११	६	दि.
३०	०	०	०	३०	०	०	३०	३०	३०	घ.

श. द. सूर्य के अन्तर में प्रत्यन्तर

ध्रु	सू	चं	मं	रा	बृ	श	बु	के	शु	
०	०	०	०	१	१	१	१	०	१	मा.
२	१७	२८	१९	२१	१५	२४	१८	१९	२७	दि.
५१	६	३०	५७	१८	३६	९	२७	५७	०	घ.

श. द. चन्द्रमा के अन्तर में प्रत्यन्तर

ध्रु	सू	मं	रा	वृ	श	वु	के	शु	चं	
०	१	१	२	२	३	२	१	३	०	मा.
४	१७	३	२५	१६	०	२०	३	५	२८	दि.
४५	३०	१५	३०	०	१५	४५	१५	०	३०	घ.

श. द. मङ्गल के अन्तर में प्रत्यन्तर

ध्रु	मं	रा	वृ	श	बु	के	शु	सू	चं	
०	०	१	१	२	१	०	२	०	१	मा.
३	२३	१९	२३	३	२६	२३	६	१९	३	दि.
१९	१६	५१	१२	१०	३१	१६	३०	५७	१५	घ.
३०	३०	०	०	३०	३०	३०	०	०	०	प.

श. द राहु की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर

ध्रु	रा	वृ	श	बु	के	शु	सू	चं	म	
०	५	४	५	४	१	५	१	२	१	मा.
८	३	१६	१२	२५	२९	२१	२१	२५	२९	दि.
३४	५४	४८	२७	२१	५१	०	१८	३०	५१	घ.

के. द. गुरु के अन्तर में प्रत्यन्तर

ध्रु	बृ	श	वु	के	शु	सू	चं	मं	रा	
०	४	४	४	१	५	१	२	१	४	मा.
७	१	२४	९	२३	२	१५	१६	२३	१६	दि.
३६	३६	२४	१२	१२	०	३६	०	१२	४८	घ.

वुध की दशा और वुध की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर

ध्रु	बु	के	शु	सू	चं	मं	रा	बृ	श	
०	४	१	४	१	२	१	४	३	४	मा.
७	२	२०	२४	१३	१२	२०	१०	२५	१७	दि.
१३	४२	३४	३०	२१	१५	३४	३	३६	१६	घ.
३०	३०	३०	०	०	०	३०	०	०	३०	प.

वुध की दशा केतु के अन्तर में प्रत्यन्तर

ध्रु	के	शु	सू	चं	मं	रा	वृ	श	वु	
०	०	५	०	०	०	१	१	१	१	दि.
२	२०	२९	१७	२९	२०	२३	१७	२६	२०	मा॰
५	४९	३०	५१	१५	४९	३३	३६	३१	३४	घ.
३०	३०	०	०	०	३०	०	०	३०	३०	प.

वुध की दशा शुक्र के अन्तर में प्रत्यन्तर

ध्रु	शु	सू	चं	मं	रा	वृ	श	वु	के	
०	५	१	६	१	५	४	५	४	१	मा.
८	२०	२१	२५	२९	३	१६	११	२४	२९	दि
३०	०	०	०	३०	०	०	३०	३०	३०	घ.

वुध की दशा सूर्य के अन्तर में प्रत्यन्तर

ध्रु	सू	चं	मं	रा	वृ	श	वु	के	शु	
०	०	०	०	१	१	१	१	०	१	मा.
२	१९	२५	१७	१५	१०	१८	१३	१७	२१	दि.
३३	१८	३०	५१	५४	४८	२७	२१	५१	०	घ.

बुध की दशा चन्द्रमा के अन्तर में प्रत्यन्तर

ध्रु	चं	मं	रा	वृ	श	वु	के	शु	सू	
०	१	०	२	२	२	२	०	१	०	मा.
४	१२	२९	१६	८	२०	१२	२९	२५	२५	दि.
१५	३०	४५	३०	०	४५	१५	४५	०	३०	घ.

बुध की दशा मंगल के अन्तर में प्रत्यन्तर

ध्रु	मं	रा	बृ	श	बु	के	श	सू	चं	
०	०		१	१	१	०	१	०	०	ना
२	२०	२३	१७	२६	२०	२०	२९	१७	२९	दि.
५८	४९	३३	३६	३१	३४	३३	२०	५१	४५	घ.
३०	३०	०	०	०	३०	३०	०	०	०	प.

बुंध की दशा में राहु के अन्तर में प्र॰यन्तर

ध्रु	रा	बृ	श	ब	के	शु	सू	च	मं	
०	४	४	४	४	१		१	२	१	दि
७	१७	२	२५	१०	२३	३	१५	१६	२	मा
३९	४२	२५	२१	३	३३	०	५४	३०	१०	घ.

बुध की दशा गुरु के अन्तर में प्रत्यन्तर

ध्रु	बृ	श	व	के	शु	स	चं	मं	रा	
०	३	४	३	१	४	१	२	१	४	दि.
६	१८	९	२५	१७	१६	१०	८	१७	२	मा.
४८	४८	१२	३६	३६	०	४८	०	३६	२४	घ

बुध की दशा शनि की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर

ध्रु	श	बु	के	शु	सू	चं	म	रा	बृ	
०	५	४	१	५	१	२	१	४	४	दि.
८	३	१७	२६	११	१८	२०	२६	२५	९	मा
४	२५	१६	३१	३०	२७	४५	२१	२१	१२	दि.
३०	३०	३०	१०	०	०	५०	३०	०	०	घ.

केतु की दशा केतु के अन्तर में प्रत्यन्तर

ध्रु	के	शु	सू	चं	मं	रा	बृ	श	बु	
०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	मा.
२	८	२४	७	१२	८	२२	१९	२३	२०	दि.
५८	३४	३०	२१	१५	३	३	३६	१६	४९	घ.
३०	३०	०	०	०	३०	०	०	३०	०	प.

केतु की दशा शुक्र के अन्तर में प्रत्यन्तर

ध्रु	शु	सू	चं	मं	रा	बृ	श	वु	के	
०	२	०	१	०	२	१	२	१	०	मा.
३	१०	२१	५	२४	३	२६	६	२९	२४	दि.
३०	०	०	०	३०	०	०	३०	३०	३०	घ.

के. द. सूर्य के अन्तर में प्रत्यन्तर

ध्रु	सू	चं	मं	रा	बृ	श	बु	के	शु	
०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	मा
१	६	१०	७	१८	१६	१९	१७	७	२१	दि.
३	१८	३०	२१	५४	४८	५७	५१	२१	०	घ.

के. द. चन्द्रमा की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर

ध्रु	च	म	रा	बृ	श	बु	के	शु	सू	
०	०	०	१	०	१	०	०	१	०	मा.
१	१७	१२	१	२८	३	२९	१२	५	१०	दि.
४५	३०	१५	३०	०	२५	४५	१५	०	२०	घ.

के. द. मङ्गल के अन्तर में प्रत्यन्तर

ध्रु	मं	रा	बृ	श	वु	के	शु	सू	च	
०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	मा.
१	८	२२	१९	२२	२०	८	२४	७	१२	दि.
१२	३४	३	३६	१६	४९	३४	३०	२१	१५	घ
३०	३०	०	०	३०	३०	३०	०	०	०	प.

के. द. राहु के अन्तर में प्रत्यन्तर

ध्रु	रा	बृ	श	बु	क	शु	सू	चं	मं	
०	१	१	०	१	०	२	०	१	०	मा.
३	२६	२०	२९	२३	२२	३	१८	१	२२	दि.
९	२४	२४	५१	३३	३	०	५४	३०	३	घ.

केतु की दशा में गुरु के अन्तर में प्रत्यन्तर

ध्रु	बृ	श	बु	के	शु	सू	चं	मं	रा	
०	१	१	१	०	१	०	०	०	१	मा.
२	१४	२३	१७	१९	२६	१६	२८	१९	२०	दि
४८	४८	१२	३६	३६	०	४८	०	३६	२४	घ.

के. द. शनि के अन्तर में प्रत्यन्तर

ध्रु	श	बु	के	शु	सू	चं	मं	रा	बृ	
०	[illegible]	१	०	२	०	१	०	१	०	मा.
३	३	२६	२३	६	१९	३	२३	२९	२३	दि.
१९	१०	३१	१६	२०	५७	१५	१६	५१	१२	घ.
३०	३०	३०	३०	०	०	०	३०	०	०	प.

के. द. बुध के अन्तर में प्रत्यन्तर

ध्रु	बु	के	शु	सू	चं	मं	रा	बृ	श	
०		०	१	०	०	०	१	१	१	दि.
२	२०	२०	२९	१७	२९	२०	२३	१७	२६	मा.
५८	३४	४९	३०	५१	४२	४९	३३	३६	३१	घ.
३०	३०	३०	०	०	०	३०	०	०	३०	प.

शु. द. शुक्र की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर

ध्रु	शु	सू	च	मं	रा	बृ	श	बु	के	
०	६	२	३	२	६	५	६	५	२	मा.
१०	२०	०	१०	१०	०	१०	१०	२०	१०	दि.

शु. द. रवि के अन्तर में प्रत्यन्तर

ध्रु	सू	चं	मं	रा	बृ	श	बु	के	शु	
२	०	१	०	१	१	१	१	०	२	मा.
०	१८	०	२१	२४	१८	२७	२१	२१	०	दि.

शु. द. चन्द्रमा के अन्तर में प्रत्यन्तर

ध्रु	चं	मं	रा	बृ	श	बु	के	शु	सू	
०	१	१	३	२	३	२	१	३	१	मा.
५	२०	५	०	२०	५	२५	५	१०	०	दि.

शुक्र की दशा मंगल के अन्तर में प्रत्यन्तर

ध्रु	मं	रा	बृ	श	बु	के	शु	सू	चं	
०	०	२	१	०	१	०	२	०	१	मा.
३	२४	३	२६	६	२९	२४	४०	२१	५	दि.
३०	३०	०	०	३०	३०	३०	०	०	०	घ.

शुक्र की दशा राहु के अन्तर में प्रत्यन्तर

ध्रु	रा	बृ	श	बु	के	शु	सू	चं	मं	
०	५	४	५	५	२	६	१	३	२	मा.
९	१२	२४	२१	३	३	०	२४	०	३	दि.

शुक्र की दशा में बृहस्पति के अन्तर में प्रत्यन्तर

ध्रु	बृ	श	बु	के	शु	सू	च	मं	रा	
०	४	५	४	१	५	१	२	१	४	दि.
८	८	२	१६	२६	१०	१८	२०	२६	२४	मा.

शुक्र की दशा शनि के अन्तर में प्रत्यन्तर

ध्रु	श	बु	के	शु	सू	च	मं	रा	बृ	
०	६	५	२	६	१	३	२	५	५	मा.
९	०	११	६	१०	२७	५	६	२१	२	दि.
३०	३०	३०	३०	०	०	०	३०	०	०	घ.

शुक्र की दशा बुध के अन्तर में प्रत्यन्तर

ध्रु	बु	के	शु	सू	चं	मं	रा	बृ	श	
०	४	१	५	०	२	१	५	४	५	मा.
८	२४	२९	२०	२१	२५	२९	३	१६	११	दि.
३०	३०	३०	०	०	०	३०	०	०	३०	घ.

शुक्र की दशा केतु के अन्तर में प्रत्यन्तर

ध्रु	के	शु	सू	चं	मं	रा	बृ	श	बु	
०	०	२	०	१	०	२	१	२	१	मा.
३	२४	१०	२१	५	२४	३	२५	६	२९	दि.
३०	०	०	०	०	३०	०	०	३०	३०	घ.

इस प्रकार प्रत्येक प्रत्यन्तर दशा के मान में १२० का भाग देकर ध्रुवक समझना। उस ध्रुवक को ग्रहों के दशा वर्ष प्रमाण से पृथक्-पृथक् गुना करने से प्रत्यन्तर में उपदशा होती है।

अथ शुभाऽशुभसंज्ञाध्यायः

तत्रादावन्यजातकादस्य विशेषतां कथयति—

बुधैर्भावादयः सर्वे ज्ञेयाः सामान्यशास्त्रतः ।
एतच्छास्त्रानुसारेण संज्ञां ब्रूमो विशेषतः ॥ ४ ॥

सं० बुधैः (विद्वद्भिः) भावादयः (तन्वादयो द्वादशभावा आदि शब्देन गृहादिषड्वर्गा ग्रहाणामुच्चनीचराश्यादयः) सर्वे (पदार्थाः) सामान्यशास्त्रतः (गर्गादिमुनिप्रणीतजातकशास्त्रात्) ज्ञेयाः (ज्ञातव्याः) एतच्छास्त्रानुसारेण (एतस्य पराशरशास्त्रस्य मतेन) विशेषतः संज्ञां (अन्यजातकाद् विलक्षणरूपां) ब्रूमः (कथयामः) ॥ ४ ॥

विद्वान् को गर्गाचार्य आदि मुनि प्रणीत जातक शास्त्र से ही तन्वादि द्वादश भाव, षड्वर्ग, ग्रहों के उच्च-नीच आदि सब पदार्थ समझना चाहिये। इस ग्रन्थ के अनुसार ग्रह और भावों की (शुभ अशुभ मध्यम आदि) विशेष संज्ञा को ही हम कहते हैं ॥ ४ ॥

विशेष—लग्न आदि द्वादश भावों की कल्पना—

राशि—नक्षत्रों के समूह का नाम राशि है। आकाश में जहाँ ताराएँ दीख पड़ती हैं वह भगोल कहलाता है। भगोल के तुल्य २७ विभाग अश्विनी आदि २७ नक्षत्रों के नाम से प्रसिद्ध हैं। तथा अश्विनी नक्षत्र से भगोल के तुल्य १२ विभाग मेष आदि नाम से १२ राशियाँ प्रसिद्ध हैं।

क्षितिज—पूर्व दिशा में जहाँ ग्रह और नक्षत्र का उदय देखने में आता है वह उदयक्षितिज और पश्चिम दिशा में जहाँ अस्त होते देख पड़ता है वह अस्त क्षितिज कहलाता है।

लग्न—इष्टकाल में उदयक्षितिज में जो राशि लगी रहती है वही लग्न कहलाती है। सूर्योदय समय में जिस राशि में सूर्य रहता है वह लग्न भी होती है, बाद अहोरात्र भर में १२ राशियों के क्रम से उदय होते हैं।

१ [तनुभाव]—जन्म समय में जिस लग्न का उदय होता है उसका देह के साथ उदय होने तथा शरीर पर उसके किरण के प्रभाव के कारण तनुभाव नाम रखा गया, इस लिए देह के (अङ्ग, वपुः आदि) जितने नाम हैं उन सब से लग्न का बोध होता है।

२ [धनभाव] - देह के उदय (शरीर की प्राप्ति) होने के अनन्तर ही उस (देह) की रक्षा के लिए धन (अन्न-वस्त्र-द्रव्य) की भावना हृदय में आती है इसलिए द्वितीय लग्न का धनभाव नाम रखा गया।

३ [सहज]—धन की प्राप्ति और रक्षा के लिए पराक्रम करना पड़ता है तथा पराक्रम में सहायक और धन के विभागकारक सहोदर होते हैं इसलिए धनभाव के बाद ३ तृतीयलग्न के पराक्रम तथा सहज भाव नाम हुए।

४ [सुख]—पराक्रम प्राप्त होने पर—गृह और माता आदि बन्धुओं से सुख की भावना हृदय में आती है, इसलिए तृतीयभाव के बाद चतुर्थ लग्न के माता, गृह, बन्धु, सुखभाव नाम हुए।

५ [सुत]—बन्धु-गृह-सुख लाभ होने पर—'अपुत्रस्य गतिर्नास्ति' इत्यादि शास्त्र के वचनों से पुत्र प्राप्ति की भावना मन में आती है, अथवा "ब्रह्मज्ञानं परं सुखम्" विषय सुख की अपेक्षा ब्रह्मज्ञान परम सुख है, ब्रह्मज्ञान विद्या से होता है इसलिए चतुर्थ भाव के बाद पञ्चम लग्न के पुत्रभाव तथा विद्याभाव नाम हुए।

६ [रिपुभाव]—पुत्रप्राप्ति की कामना के अनन्तर विवाह करने की कामना हृदय में आती है - परञ्च 'रोगिणो नैव दातव्या न मूर्खाय कदाचन" इत्यादि वचनों से रोगियों को कन्या देना निषेध है, अतः शरीर को रोगहीन बनाने की भावना हृदय में आती है, अतः पञ्चम के बाद षष्ठ लग्न का रोग भाव नाम हुआ। तथा रोग ही अन्तःशत्रु है और शत्रु भी रोग स्वरूप है इसलिए षष्ठभाव का ही रिपुभाव भी नाम हुआ।

७ [जायाभाव]—एवं रोग से विमुक्त होने पर स्त्री ग्रहण करने की भावना होती है। अतः सप्तम लग्न का जायाभाव नाम रखा गया।

८ [मृत्यु]—जाया (स्त्री) प्राप्ति होने के अनन्तर मृत्यु से बचने और आयुर्दाय बढ़ाने की भावना होती है। अतः अष्टम लग्न के मृत्यु तथा आयुर्भाव नाम हुए।

९ [धर्म]—"आयुर्वृद्धिर्धर्मवृद्धया जनानाम्" इत्यादि वचनों से धर्माचरण से ही आयुर्दाय की वृद्धि होती और मृत्यु का निवारण होता है। अतः मृत्युभाव के बाद नवम लग्न का धर्म, तप, पुण्य (भाग्य) नाम हुए।

१० [कर्म]—धर्मवृद्धि के लिए यज्ञ आदि कर्म तथा कर्म सम्पन्नता के लिए राज्य अथवा पिता या पालक (राजा) का आश्रय लेना पड़ता है इसलिए दशम लग्न का 'कर्म, राज्य, तात' नाम हुए।

११ [आय]—पुनः कर्म सम्पन्नता के लिए आय (द्रव्यादि लाभ) की भावना होती है, इसलिए एकादश लग्न का आयभाव नाम हुआ।

१२ [व्यय]—आय (लाभ) होने के अनन्तर उसका किस प्रकार व्यय होना चाहिए ऐसी भावना हृदय में आती है अतः द्वादश का व्ययभाव नाम हुआ। इस प्रकार बारहों लग्न के तनु आदि १२ संज्ञाएँ हुईं।

अभ्यासार्थ—भावसंज्ञाबोधक पद्य—

लग्नात् तनुर्धनं भ्राता सुख-पुत्र-रिपु-स्त्रियः।
मृत्यु-धर्मौ च कर्मायौ व्ययो भावाः क्रमादमी॥ स्पष्टार्थ

प्रसङ्गवश मेषादि राशियों के स्वामी—

सिंहस्याधिपतिः सूर्यः, कर्कस्याधिपतिः शशी।
मेष वृश्चिकयोर्भौमो, बुधो मिथुन-कन्ययोः॥
जीवो मीन-धनुःस्वामी शुक्रो वृष-तुलाधिपः।
प्राज्ञैरधिपतिः प्रोक्तः शनिर्मकर-कुम्भयोः॥ स्पष्टार्थ।

यहाँ यह प्रश्न आता है कि—सूर्य और चन्द्रमा ग्रहों में प्रधान होकर

भी एक-एक राशि के स्वामी और अन्य ग्रह अप्रधान होने पर भी दो-दो राशियों के स्वामी क्यों हुए ?। क्योंकि कहा भी है—

शशि-सूर्यौ तु राजानौ युवराजो बुधः स्मृतः।
भौमो नेताः शनिर्भृत्यो मंत्रिणौ गुरु-भार्गवौ॥ स्पष्टार्थ।

इसके उत्तर में यह वचन है कि—

चक्रार्धस्य पतिः सूर्यश्चक्रार्धस्य पतिः शशी।
अन्ये ग्रहास्तयोर्गेहे मन्त्र्यादित्वेन संस्थिताः॥

सूर्य और चन्द्रमा राजा हैं इसी लिए चक्रार्ध (६ राशियों) का स्वामी सूर्य और ६ राशियों का स्वामी चन्द्रमा है। और कुजादि ग्रह मन्त्रित्व आदि अधिकार से उन दोनों के गृह में रहते हैं। जैसा कहा भी है

सिंहाद् भषट्कं रविणा गृहीतं कर्काद् भषट्कं शशिना विलोमात्।
ताभ्यां च दत्तं गृहमेकमेकं कुजादिकेभ्यो द्विभपास्ततस्ते॥

सिंह आदि क्रम से ६ राशियाँ सूर्य के अधिकार में, और कर्क से विलोमक्रम से ६ राशियाँ चन्द्रमा के अधिकार में हैं। उनमें पराक्रम, शील समझकर सिंह में सूर्य ने अपना स्थान बनाया। और मित्रता के कारण उनके समीप कर्क राशि में चन्द्रमा ने अपना स्थान बनाया। और अन्य ग्रहों को दोनों ने अपने-अपने अधिकार की राशियों में एक-एक राशियाँ दीं, इसलिए मङ्गलादि ग्रह दो-दो राशियों के स्वामी हुए। अर्थात् बुध युवराज (राजपुत्र) है इसलिए अपने समीप में सूर्य ने कन्या राशि और चन्द्रमा ने अपने समीप में मिथुन राशि दिये। बाद उसके मन्त्री शुक्र (प्रथम सुरगुरु) को सूर्य ने तुला, और चन्द्रमा ने वृष में स्थान दिया। बाद उसके सेनापति मंगल को सूर्य ने वृश्चिक और चन्द्रमा ने मेष दिया। फिर मन्त्री बृहस्पति को सूर्य ने धनु और चन्द्रमा ने मीन में स्थान दिया। सबसे अन्त में भृत्य शनि को सूर्य ने मकर और चन्द्रमा ने कुम्भ में स्थान दिया। अतः सूर्य और चन्द्रमा को एक एक राशि बची और अन्य ग्रहों की दो-दो स्थान हुए। स्पष्टार्थ चक्र देखो॥ ४॥

स्पष्टार्थ राश्यधिप जानने का चक्र—
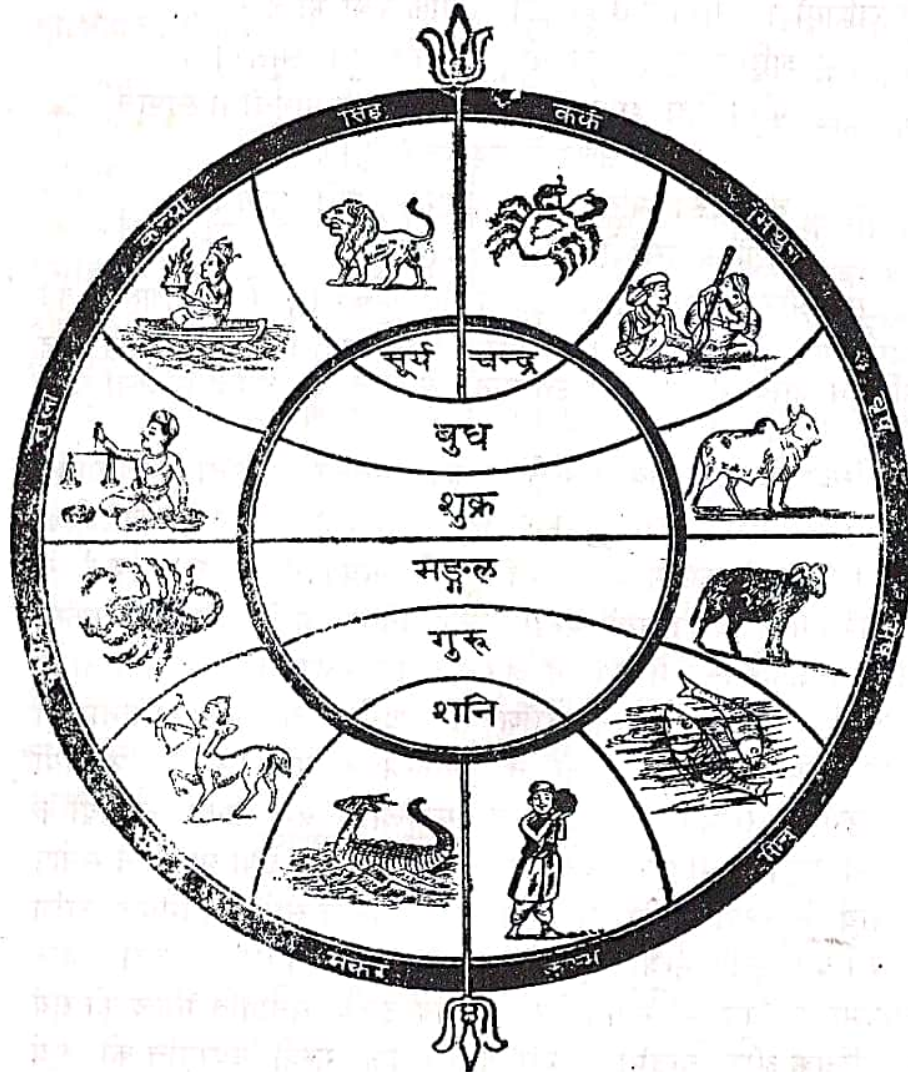
अथाऽन्यशास्त्रात्—ग्रहाणां दृष्टौ विशेषतां कथयति—

पश्यन्ति सप्तमं सर्वे शनि-जीव-कुजाः पुनः ।
विशेषतश्च त्रिदश-त्रिकोण-चतुरष्टमान् ॥ ५ ॥

सं०—सर्वे (ग्रहाः) 'स्वस्थानात्' सप्तमं 'स्थानं' पश्यन्ति । पुनः शनि-जीव-कुजाः विशेषतः 'क्रमेण' त्रिदश-त्रिकोण-चतुरष्टमान् 'पश्यन्ति' ।

अन्यजातकग्रन्थेषु त्रिदश-त्रिकोण-चतुरस्र-स्थानेष्वपि सर्वग्रहाणां चरण-वृद्धया दृष्टिरुक्ता, अत्र तु पूर्णदृष्टिरेव गृहीतेत्येवान्यग्रन्थादस्य विशेषता बोध्येति ॥ ५ ॥

भा०—(अब अन्यजातकशास्त्र से ग्रहों की दृष्टि में विशेषता कहते है) अपने स्थान से सप्तम स्थान को सब ग्रह देखते हैं। इससे विशेष शनि ३।१० को भी और बृहस्पति ५।९ को भी और मंगल ४।८ स्थानों को भी देखता है ॥ ५ ॥

वि०—दूसरे जातक में त्रिदश (३।१०) में एक चरण, त्रिकोण (५।९) में २ चरण, चतुरस्र (४।८) में ३ चरण दृष्टि अन्य सब ग्रहों की भी कही गयी है। इस ग्रन्थ में केवल पूर्ण दृष्टि ही मानी गई है, यही इसमें विशेषता है ॥ ५ ॥

अत्र युक्तिः—स्वधर्मं स्वप्रसूतिं च जायां रक्षन् हि रक्षति ।
सर्वे जायागृहं तस्माद् ग्रहाः पश्यन्ति सप्तमम् ॥

स्त्री की रक्षा से ही धर्म और सन्तति आदि की रक्षा होती है, इस लिये सप्तम (जायास्थान) पर सब ग्रहों की दृष्टि उचित ही है। तथा—

तृतीयं विक्रमस्थानं दशमं राज्यमेव च ।
भृत्याधीनं द्वयं तस्मात् शनिः पश्यति तद्द्वयम् ॥

तृतीय पराक्रम स्थान, और दशम राज्य स्थान है, इन दोनों स्थानों की देखभाल करना भृत्य का काम है, अतः भृत्यग्रह (शनि) इन दोनों स्थानों को भी देखता है। तथा—

विद्यायाः पञ्चमं स्थानं धर्मस्य नवमं गृहम् ।
गुर्वधीनं द्वयं तस्माद् गुरुः पश्यति तद्द्वयम् ॥

पञ्चम विद्यास्थान और नवम धर्मस्थान है, ये दोनों गुरु के अधीन रहते हैं, इस लिये गुरु इन दोनों (५।९) को भी देखते हैं। तथा—

सुखस्थानं चतुर्थं स्यादायुःस्थानं तथाऽष्टमम्।
नेत्रा रक्ष्यं द्वयं तस्मात् कुजः पश्यति तद्द्वयम्॥

चतुर्थ सुख स्थान और अष्टम आयुर्दाय स्थान है, इन दोनों का रक्षक नेता ही होता है, इसलिये इन दोनों स्थानों को नेताग्रह (मंगल) देखता है ॥५॥

अब ग्रहों के शुभाऽशुभत्व में विशेषता कहते हैं। ग्रहों में शुभाऽशुभत्व दो प्रकार के हैं—एक तो स्वाभाविक, दूसरा तात्कालिक। स्वाभाविक शुभाशुभत्व तो अन्य जातकग्रन्थों में प्रसिद्ध ही है। यहाँ लग्नादि द्वादश भावों के आधिपत्य से शुभाशुभत्व के ४ भेद कहे गये हैं, अर्थात् तीन स्थानों के स्वामी शुभप्रद, तीन स्थानों के स्वामी पापफलप्रद, तीन स्थानों के स्वामी मिश्रफलप्रद तथा तीन स्थानों के स्वामी शून्यफलप्रद होते हैं। जो आगे स्पष्ट है। इस प्रकार जो नैसर्गिक और तात्कालिक दोनों तरह से शुभ है वह अति शुभ, जो दोनों तरह पाप है वह अति पाप, जो एक तरह पाप, एक तरह शुभ वह सम हो जाता है। जो एक तरह सम और एक तरह पाप हो वह पाप ही रहता है। जो एक तरह सम एक तरह से शुभ हो वह शुभ ही रहता है। कहा भी है—

तत्काले च निसर्गे च शुभः सोऽतिशुभप्रदः।
उभयत्रापि पापो यः सोऽतिपापफलप्रदः॥
शुभश्चैकत्र चान्यत्र पापः स समतामियात्।
इत्येवं तारतम्येन फलान्यूह्यानि सूरिभिः॥ स्पष्ट ॥

अथ प्रसंगवश नैसर्गिक शुभाशुभत्वज्ञानार्थं पद्य—

सूर्य-सौरि-कुजाः पापा गुरु-शुक्रौ शुभौ स्मृतौ।
ज्ञेन्दू समौ, तमःखेटौ साहचर्यात् फलप्रदौ॥

सूर्य-शनि-मङ्गल ये नैसर्गिक क्रूर, तथा गुरु-शुक्र नैसर्गिक शुभ, तथा बुध और चन्द्र सम* तथा राहु-केतु साहचर्य से फलप्रद हैं॥५॥

* पूर्णबली चन्द्रमा शुभ, क्षीणबली पाप होता है। बुध भी पाप के साथ पाप और शुभ के साथ शुभ होते हैं इसलिये ये दोनों सम कहे गये हैं।

अथ तात्कालिकशुभाशुभत्वविचारे त्रिकोणाधिपतीनां शुभत्वं, त्रिषडायाधिपतीनां पापत्वं च कथयति—

सर्वे त्रिकोणनेतारो ग्रहाः शुभफलप्रदाः।
पतयस्त्रिषडायानां यदि पापफलप्रदाः॥ ६॥

सं०—सर्वे ग्रहा यदि त्रिकोणनेतारः (लग्न-पंचम-नवमभावाधिपतयो भवन्ति तदा) शुभफलप्रदा 'भवन्ति'। (अर्थादन्यजातकोक्तनिसर्गपापग्रहा अपि तत्काले त्रिकोणाधिपत्येन शुभप्रदा भवन्ति, नैसर्गिकशुभग्रहास्तु त्रिकोणाधिपत्येनाऽत्यन्तशुभफलदायका भवन्तीति सिद्ध्यति)। यदि सर्वे ग्रहाः त्रिषडायानां (तृतीयषष्ठैकादशभावानां) पतयो भवन्ति तदा पापफलप्रदा भवन्ति (अर्थात् नैसर्गिकशुभग्रहा अपि तत्काले त्रिषडायाधिपत्येन पापफलप्रदा एव, स्वाभाविकपापास्त्वतीव पापफलप्रदा इत्यर्थादेवावगम्यते। अन्यथा स्वस्वस्वभावानुसारेणैव फलप्रदा भवन्तीत्येव 'यदि' शब्दः प्रयुक्तोऽत्राचार्येणेति दिक्।

लग्नं तु त्रिकोणे केंद्रे च गण्यतेऽतो लग्नेशस्यापि शुभत्वमेव बोध्यम्। यतः—"स एक शुभसन्धाता लग्नाधीशोऽपि चेत् स्वयं"-मित्याचार्येणाप्यग्रे प्रतिपादितम्॥ ६॥

भा०—कोई भी ग्रह यदि त्रिकोण (१।५।९) का स्वामी हो तो शुभफलदायक होता है। तथा यदि त्रिषडाय (३।६।११) का स्वामी हो तो पापफलदायक होता है।

इससे सिद्ध होता है कि—स्वाभाविक पापग्रह भी त्रिकोणपति हो तो शुभ होता है, तथा स्वाभाविक शुभ यदि त्रिकोणपति हो तो अत्यन्त विशिष्ट शुभदायक होता है। इसी प्रकार स्वाभाविक शुभ भी यदि त्रिषडायपति हो तो पापफलदायक होता है, तथा स्वाभाविक पापप्रद त्रिषडायपति होने से अत्यन्त पापफलदायक होता है, जो पूर्व श्लोक की टीका में स्पष्ट कहा गया है॥ ६॥

वि०--यहाँ त्रिकोण में लग्न की भी गणना है। इसी अभिप्राय से "त्रिकोणनेतारः" बहुवचनान्त पाठ भी है। यदि केवल पंचम, नवम दो ही स्थान आचार्य को अभिप्रेत रहता तो "लग्नाद्व्ययद्वितीयेशौ" इत्यादि के समान "त्रिकोणनेतारौ" ऐसा द्विवचनान्त ही पाठ रखा जाता। तथा तीन स्थान से ही त्रिकोण शब्द सार्थक हो सकता है। आचार्य ने स्वयं भी आगे 'लग्नाधीशोऽपि चेत् स्वयम्" इत्यादि लग्नेश को शुभ ही कहा है। तथा तीन-तीन स्थानों के समान गुण हैं जो आगे सयुक्तिक वर्णित है। इसलिए त्रिकोणशब्द से १।५।९ तीनों स्थान ग्राह्य है। केवल ५।९ ग्रहण करना असंगत है॥ ६॥

त्रिकोणेश के शुभ होने में युक्तिवचन—

विद्या-धर्मौ गृहे चेत् स्तस्तदा क्रूरोऽपि साधुताम्।
व्रजेदतीव साधुत्वं साधुश्चेदिति दृश्यते॥
शरीरं च वशे यस्य स साधुः सद्भिरुच्यते।
लग्नं शरीरमाख्यातं तस्मात् तदधिपः शुभः॥
नवमो धर्मभावोऽस्ति विद्याभावश्च पंचमः।
तस्मात् तदाधिपत्येन ग्रहा सर्वे शुभप्रदाः॥

घर में विद्या और धर्म के प्रचार होने से क्रूर भी साधु हो जाता है, साधु तो अत्यन्त साधु हो जाता है। एवं जिसके वश में अपना देह रहता है वह भी साधु कहलाता है। इसलिए देहभाव (लग्न) और विद्याभाव (पंचम) तथा धर्मभाव (नवम) इन तीनों स्थान के आधिपत्य से ग्रहों में भी साधुता हो जाना समुचित ही है।

तथा त्रिषडायपति के पापत्व होने में युक्तिवचन—

आयः पराक्रमौ वाऽपि शत्रुर्वाऽपि गृहे तदा।
साधोरपि खलत्वं स्यादिति लोकेऽपि दृश्यते॥
तस्मात् स्वभावतः सौम्याः पापा वा गगनेचराः।
त्रिषडायाधिपत्येन सर्वे पापफलप्रदाः॥

जिस किसी के घर में सदा आय (लाभ) हो, अथवा विशेष पराक्रम हो, वा शत्रु हो तो स्वभाव से साधु होते हुए भी उसमें क्रूरता आ ही जाती है, ऐसा देखा जाता है। इसलिए तृतीय (पराक्रम), षष्ठ (शत्रु) एकादश (आय) स्थानों के आधिपत्य से शुभग्रह में भी क्रूरता हो जाना उचित ही है।

इससे दशाफल के विषय में (१।५।९) त्रिकोण स्थान शुभ, और त्रिषडाय (३।६।११) ये तीन स्थान अशुभ सिद्ध हुए॥ ६॥

अथ लग्नरहितानां त्रयाणां केन्द्रस्थानानामाधिपत्येन ग्रहाणां फलं कथयति—

न दिशन्ति शुभं नृणां सौम्याः केन्द्राधिपा यदि।
क्रूराश्चेदशुभं ह्येते प्रबलाश्चोत्तरोत्तरम्॥ ७॥

सं०—यदि सौम्याः (स्वाभाविकशुभग्रहाः गुरु-शुक्र-बुध-पूर्णचन्द्राः) केन्द्राधिपाः (केन्द्रस्थानां चतुर्थसप्तमदशमानां) स्वामिनः तदा नृणां (जनानां) शुभं (शुभदशाफलं) न दिशन्ति (न प्रयच्छन्ति)। चेत् क्रूराः (स्वाभाविकपापग्रहाः) केन्द्राधिपास्तदा अशुभं (अशुभदशाफलं) न दिशन्ति। तथा एते उत्तरोत्तरं प्रबला भवन्ति। (अर्थात् लग्नेशात् पञ्चमेशः, पञ्चमेशात् नवमेशः प्रबलः। एवं तृतीयेशात् षष्ठेशः, षष्ठेशादपि एकादशेशः प्रबलः। तथा चतुर्थेशात् सप्तमेशः, सप्तमेशाद् दशमेशः प्रबलो भवति)॥ ७॥

भा०—यदि शुभग्रह (गुरु, शुक्र, पूर्णचन्द्र) केन्द्र (४।७।१०) के अधिपति हों तो प्राणियों को शुभदशाफल नहीं देते। तथा पापग्रह (क्षीणचन्द्र, पापयुत बुध, रवि, शनि, मंगल) यदि केन्द्र (४।७।१०) के स्वामी हों तो अपने स्वभावानुसार पापफल नहीं देते। अर्थात् केन्द्राधिपति होने से सब ग्रह अपने-अपने स्वभाव को भूल जाते हैं, इसलिये अपने-अपने फल को नहीं देते हैं। अतः केन्द्र (४।७।१०) स्वामी होने से शुभग्रह में पापत्व, और पाप ग्रह में शुभत्व आ जाता है। ये उत्तरोत्तर क्रम से बली है। अर्थात्--लग्नेश से पञ्चमेश, पञ्चमेश से भी नवमेश बली है। तथा तृतीयेश षष्ठेश, से षष्ठेश से भी एकादशेश

बली है। एवं चतुर्थेश से सप्तमेश और सप्तमेश से भी दशमेश बली है॥ ७॥

वि०—पहले त्रिकोण के ही गुण कहे गये हैं, अतः त्रिकोण ही में लग्न के गृहीत हो जाने से यहाँ केन्द्रपद से शेष (४। ७। १०) तीन स्थान का ही ग्रहण करना युक्तिसंगत है। इसमें युक्तिवचन—

> येषां गृहे सुखं नित्यं राज्यं वाऽपि वराङ्गना।
> विस्मरन्ति स्वभावं स्वं ते हि तल्लग्नमानसाः॥
> तस्मात् तदाधिपत्येन शुभा नैव शुभं फलम्।
> पापाः पापफलं नैव दिशन्तीति परिस्फुटम्॥

जिसके घर में सर्वदा स्थिर सुख, वा स्थिर राज्य, वा स्थिर सुन्दरी स्त्री रहती है, वह उसीमें दत्तचित्त रह कर अपने स्वभाव को भूल जाता है, यह विषय प्रत्यक्ष संसार में देखने में आता है। अतः सुख (४) स्त्री (७) राज्य (१०) इन केन्द्र स्थानों के स्वामी होकर शुभग्रह भी अपना शुभ फल देना और पापग्रह भी अपना पापफल देना भूल जाते हैं। इससे यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि केन्द्राधिप न शुभ फल देता है और न अशुभ फल देता है॥ ७॥

अथ द्वितीय-द्वादशेशयोः फलविशेषतामाह—

> **लग्नाद्व्ययद्वितीयेशौ परेषां साहचर्यतः।**
> **स्थानान्तरानुगुण्येन भवतः फलदायकौ॥ ८॥**

सं०—लग्नाद् व्यय-द्वितीयेशौ (व्ययस्थान-धनस्थानस्वामिनौ) परेषां (अन्यभावेशानां) साहचर्यतः (सहचरस्य भावः साहचर्ययोगस्तस्मात्) तथा स्थानान्तरानुगुण्येन (अन्यत् स्थानान्तरं तस्यानुगुण्येन सादृश्येन) फलदायकौ भवतः। व्ययद्वितीयेशौ येन येन ग्रहेण युक्तौ ते तत्सहचराः, तथा तौ यस्मिन् भावे स्थितौ तथा तौ (व्ययद्वितीयेशौ) यदन्यराश्यधिपौ तौ राशी चेति स्थानान्तरं ज्ञेयम्। व्ययद्वितीयेशयोर्यादृशाः सहचराः, यादृशं स्थानान्तरं तदनुरूपमेव फलं प्रयच्छतः, इत्यर्थः॥ ८॥

भा०—लग्न से द्वादशश तथा द्वितीयेश दूसरे ग्रहों के साहचर्य से तथा अपने स्थानान्तर (अन्य स्थानों) के अनुसार ही शुभ अथवा अशुभ दशा फल को देते हैं। इससे सिद्ध है कि व्ययेश और धनेश स्वभावानुसार शुभाशुभ फल नहीं देते। जिस प्रकार शुभ या अशुभ स्थान में रहते हैं, तथा जिस प्रकार के शुभ या अशुभ भावेश के साथ रहते हैं, अथवा जिस दूसरे स्थान से स्वामी हो वह राशि जैसा शुभ या अशुभ भाव में हो तदनुरूप ही शुभ या अशुभ फल देते हैं।

भावार्थ यह है कि द्वितीयेश और द्वादशेश के साथ जो ग्रह रहता है वह तदनुसार ही फल देता है। यदि बहुत ग्रह साथ में हों तो उनमें जो बली हो तदनुरूप ही फल देता है। यदि कोई ग्रह साथ में न हो तो जिस अन्य स्थान का स्वामी हो तदनुसार ही फल समझना। तथा जो दूसरे स्थान का स्वामी नहीं हो, यथा रवि अथवा चन्द्रमा, तो जिस भाव में बैठा हो तदनुसार ही फल देता है। यदि किसी से योग नहीं हो, तथा अन्य स्थान का स्वामी भी नहीं हो और अपने स्थान ही में हो तो इस हालत में अपने स्वभावानुसार ही शुभ या अशुभ फल को देता है॥ ८॥

उदाहरणार्थ जन्मलग्न कुण्डली—

इस कुण्डली में द्वादशेश शनि है। उसके साथ (सहचर) कोई ग्रह नहीं है, अतः साहचर्यानुरूप फल का वाध हो गया। इस हालत में शनि का जो स्थानान्तर (द्वितीय) स्थान कुम्भ है। वह लग्न में पड़ता है अतः 'स एव शुभसन्धाता लग्नाधीशोऽपि चेत् स्वयम्' आगे के इस वचन से लग्न शुभ स्थान है, तथा लग्न शुभ ग्रहों से युक्त है, अतः द्वादशेश (शनि) की दशा अन्तर्दशा में सत्कार्य में व्यय होना निश्चित हुआ।

एवं द्वितीयेश (बृहस्पति) के सहचर (साथ में) बुध और शुक्र दो हैं, इन दोनों में शुक्र बली है; शुक्र नवमेश (त्रिकोणपति) तथा चतुर्थेश (केन्द्रपति) हैं–तो भी बली त्रिकोणपति होने के कारण शुभ ही हुआ अतः बृहस्पति अपनी दशा में सन्मार्ग से धन की वृद्धि करायेगा ऐसा निश्चित हुआ। इसमें युक्ति वचन--

धनेशस्य व्ययेशस्य यादृक् सहचरो जनः।
तादृशं च धनं तस्य तादृशश्च व्ययो भवेत् ॥
तस्माद् व्ययद्वितीयेशौ परेषां साहचर्यतः।
शुभं वाप्यशुभं नृणां दिशतः स्वदशाफलम् ॥

जो धन का मालिक (धन रखनेवाला) है उसके साथ यदि पापी (दुष्ट, चोर आदि) रहता है तो उसके धन को समय पाकर नष्ट कर देता है। यदि उसके साथ कोई साधु (शुभचिन्तक) रहता है तो वह समय पर उसके धन को बढ़ाने और बचाने में अवश्य सहायक होता है। इसी प्रकार धनेश का भी साहचर्यानुरूप फल देना युक्तिसङ्गत है।

तथा जो लोग व्ययशील हैं उनके साथ जैसे साधु या पापी लोग रहते हैं, अथवा जैसे खानदान के, अथवा जैसे स्थान में रहते हैं उसी प्रकार व्यय करते हैं। इसी प्रकार व्ययभावेश के साथ जिस प्रकार का शुभ या अशुभ ग्रह हो, अथवा यादृशस्थानान्तर का स्वामी हो वा यादृश स्थान में हो तादृश शुभ या अशुभ मार्ग से व्यय कराता है।

कितने टीकाकार अनुगुण से चार प्रकार का सम्बन्ध ग्रहण करते हैं– यथा सहवास सम्बन्ध १, परस्परराशिस्थिति सम्बन्ध २, परस्पर-दृष्टि सम्बन्ध ३, साधर्म्य सम्बन्ध ४। तथा कोई ६ प्रकार के अनुगुण कल्पना करते हैं। यथा – विचारणीय ग्रह जिस भाव में हो १, उसके सम्बन्धी जिस भाव में हो २, विचारणीय ग्रह जिस भाव का स्वामी हो ३, उसका सम्बन्धी ग्रह जिस राशि का स्वामी हो ४, विचारणीय ग्रहा-श्रित राशि का स्वामी जिस भाव में हो ५, तत्सम्बन्धी ग्रह जिस राशि में हो ६। परञ्च इस प्रकार परम्परा सम्बन्ध कल्पना असङ्गत है। क्यों-

कि स्वभाव में हेर फेर तीन प्रकार से हो सकता है–(१) जिस प्रकार स्वभाव वाले का सहवास हो, (२) जिस प्रकार घर (खानदान) वाला हो, (३) जिस प्रकार के स्थान में हो। और जिससे दर्शन भी नहीं उसका स्वभाव किस प्रकार आ सकता है। इसलिए "साहचर्य से" साथ रहने वाला ग्रह, और स्थानान्तर से (द्वितीयेश और व्ययेश का) दूसरा स्थान ही ग्रहण करना आचार्य का अभिप्राय है।
तथा दीप्तादि अवस्था के भेद से भी फल में विशेषता होती है, यथा—

दीप्तः स्वस्थः प्रमुदितः शान्तो दीनोऽतिदुःखितः।
विकलश्च खलः कोपी, नवधा खेचरो भवेत् ॥
उच्चस्थः खेचरो दीप्तः स्वस्थः स्वर्क्षेऽधिमित्रभे।
मुदितो मित्रभे शान्तः समभे दीन उच्यते ॥
शत्रुभे दुःखितः प्रोक्तो विकलः पापसंयुतः।
खलः खलगृहे ज्ञेयः कोपी स्यादर्कसंयुतः ॥ स्पष्टार्थ ॥

इनमें दीप्त, स्वस्थ, प्रमुदित और शान्त अवस्था वाले ग्रहों की दशा शुभ और अन्य अवस्था वालों की दशा अशुभ होती है। परञ्च यह अन्य ग्रन्थों के अनुसार ही प्रयोजनीय है। इस ग्रन्थ के अनुसार नहीं ॥ ८ ॥

अथाष्टमेशस्याशुभत्वं कथयति—

भाग्यव्ययाधिपत्येन रन्ध्रेशो न शुभप्रदः।
स एव शुभसन्धाता लग्नाधीशोऽपि चेत्स्वयम् ॥ ९ ॥

सं०--भाग्यस्य व्ययो भाग्यव्ययस्तदाधिपत्येन रन्ध्रेशः (अष्टमेशः) न शुभः (शुभदशाफलदायको न भवति)। स एव (अष्टमेश एव) लग्नाधीशोऽपि चेत् तदा शुभसन्धाता (शुभफलसन्धानकारकः) अथवा-ऽष्टमेशः स्वयं (केवलोऽष्टमेश एव, न स्थानान्तरस्य स्वामी) तदापि शुभसन्धाता भवत्यत एवाग्रे--"न रन्ध्रेशत्वदोषस्तु सूर्याचन्द्रमसो-र्भवेदिति" वक्ष्यते। इति स्वयंशब्दस्य तात्पर्यार्थः ॥

सर्वव्ययापेक्षया भाग्यस्य व्ययो (विनाशः) अतीव कष्टकरो भवती-त्येव भाग्यव्याधिपत्यं कारणमुक्त्वाऽष्टमेशस्याशुभत्वं प्रतिपादितमाचा-र्येण। तथा स एवाष्टमेशो लग्नाधीशोऽपि चेत् तदा स्वभाग्यस्यैव विनाश-भीत्या शुभसन्धाताऽपि भवितुमर्हति। अथवा त्रिकोणाधिपस्यातिशुभत्वं

प्रतिपादितम्। तत्र "प्रबलाश्चोत्तरोत्तरमि"ति त्रिकोणस्थानेषु (१।५।९) नवपञ्चमापेक्षया लग्नस्याल्पशुभत्वं तस्यापि अल्पशुभ— (लग्न) —स्याप्यधीशश्चेदष्टमेशस्तदा शुभस्थानाधिपत्येन शुभसन्धाता (शुभसङ्घटनकारको) भवति। अत्र सन्धातृपदप्रयोगात् शुभस्य सन्धाता सङ्घटनकारको, न तु स्वयं शुभः इति सिद्धयति। लग्नापेक्षयाऽधिकशुभस्य, पञ्चमस्य नवमस्य वाऽधीशश्चेत् तदा त्वतीव शुभसन्धाता भवितुर्महती-त्यप्यत्र 'अपि' शब्दप्रयोगात् स्फुटमायातीत्यलं पल्लवितेन ॥ ९ ॥

भा०—भाग्य का व्ययाधिप (व्ययकारक) होने के कारण अष्टमेश शुभप्रद नहीं होता है। यदि वह लग्न का भी स्वामी हो तो अशुभ होने पर भी शुभ फल का संगटन कराता है। अथवा अष्टमेश स्वयं (अष्टमेश मात्र) हो अर्थात् दूसरे स्थान का स्वामी न हो तो भी शुभकारक होता है ॥ ९ ॥

वि०—यहाँ "लग्नाधीशोऽपि" (लग्न का भी स्वामी हो) इस ('अपि' शब्द) का यह अभिप्राय है कि त्रिकोण (१।५।९) शुभ स्थान कहे गये हैं इनमें "प्रबलाश्चोत्तरोत्तरम्" इस वचन से (५, ९) की अपेक्षा लग्न दुर्बल है उसका भी स्वामी होने से अष्टमेश यदि शुभकारक होता है तो फिर अष्टमेश ही यदि पञ्चमेश अथवा नवमेश भी हो तो बात ही क्या है ! इससे स्पष्ट हुआ कि अष्टमेश अशुभकारक है, यदि वह किसी त्रिकोण स्थान का भी स्वामी हो तो शुभकारक भी हो जाता है। इससे सिद्ध हुआ कि अष्टमेश यदि त्रिषडायादि अशुभ स्थान का भी स्वामी हो तो विशेष अशुभकारक होता है। तथा यदि किसी दूसरे स्थान का स्वामी न हो तो सामान्य अशुभकारक होता है। इसीलिए आगे रवि और चन्द्रमा में अष्टमेशत्व दोष प्रबल नहीं कहा गया है।

यहाँ यह आशङ्का होती है कि—यदि भाग्य के व्ययाधिप होने के कारण अष्टमेश में अशुभत्व हुआ—तो धन के व्ययाधिप होने से लग्नेश भी क्यों नहीं अशुभ है ? इस प्रकार सब भाव अशुभ हो सकते हैं ?

इसका समाधान इस प्रकार है कि—सब व्यय की अपेक्षा भाग्य का व्यय कष्टकारक होता है। इसके प्रमाण में कुन्ती का वाक्य महाभारत

में—"भाग्यवन्तं प्रसूयेथा मा शूरान् मा च पण्डितान्। शूराश्च कृतविद्याश्च वने सीदन्ति मत्सुताः ॥" इत्यादि भाग्य की प्रशंसा पुराणादिकों में भरी है इसलिये अष्टमेश में विशेष अशुभत्व सूचना के लिये—"भाग्यव्ययाधिपत्य" हेतु कहा गया है।

तथा—इस ग्रन्थ में व्ययाधिपत्य हेतु से भी भावेशों में शुभत्व और अशुभत्व माने गये हैं। यथा—

(१) धन का व्ययाधिप लग्नेश है। धन शरीर रक्षा के हेतु व्यय करने के लिये ही होता है, इसलिये यदि लग्नेश अपने धन का व्ययकारक हुआ तो उचित ही हुआ इसलिये शुभ है।

(२) तृतीय सहज, पराक्रम तथा आयुःस्थान है—उसका व्ययाधिप (द्वितीयेश) आयु के व्ययकारक होने से अशुभ और मारक हुआ।

(३) चतुर्थ सुखस्थान है उसका व्ययाधिप तृतीयेश होता है। इसलिये सुख के व्ययकारक होने से तृतीयेश अशुभ कहा है।

(४) पंचम विद्या स्थान है—उसका व्ययाधिप चतुर्थेश है, वह यदि शुभ होकर विद्या का नाशकारक हुआ तो अनुचित है, पापी होकर विद्या का नाशकारक हुआ तो उचित ही है अतः शुभग्रह चतुर्थेश अनुचित कर्ता (अशुभकारक), और पापग्रह चतुर्थेश उचितकर्ता (शुभकारक) समझा गया।

(५) षष्ठ शत्रुस्थान है--उसका व्ययाधिप पंचमेश है; वह शत्रु के नाशकारक होने के कारण शुभ कहा गया है।

(६) सप्तम स्त्री स्थान है—उसका व्ययाधिप षष्ठेश है। वह स्त्री के व्ययकारक होने के कारण अशुभ है।

(७) अष्टम आयुःस्थान है—उसका व्ययकारक होने से सप्तमेश मारक कहा गया है।

(८) नवम भाग्यस्थान है-उसका व्ययकारक होने के कारण अष्टमेश अशुभ कहा गया है।

(९) दशम कर्मस्थान है—कर्म संसार में बन्धन है, अतः कर्म (संसार बन्धन) के व्ययकारक होने से नवमेश अपवर्ग (सर्वोत्कृष्ट

पदार्थ) दायक है इसलिये शुभ कहा गया है।

(१०) एकादश लाभ स्थान है—उसका व्ययाधिप दशमेश यदि शुभ ग्रह होकर लाभ (आगम) का व्यय (हानि) कारक हुआ तो अनुचित-कारक होने से अशुभकारक कहा गया, और दशमेश पापग्रह होकर लाभ (स्वाभीष्ट पापफल की प्राप्ति) का नाशकारक हुआ तो अपने उचित कर्तव्य के कारण शुभकारक कहा गया है।

(११) द्वादश व्यय स्थान है—उसका व्ययाधिप एकादशेश है, वह व्यय के नाश करने (व्यय नहीं होने देने) के कारण कष्टकारक होता है, क्योंकि आमद कराने वाला यदि खर्चा नहीं करने दे तो अन्न-वस्त्र भी मिलना कठिन होता है; अतः एकादशेश अशुभ कहा गया है।

(१२) लग्न के व्ययाधिप की उपपत्ति (युक्ति) कही जा चुकी है।

इस प्रकार के विवेक से भी स्पष्ट सिद्ध है कि त्रिकोण (१ । ५ । ९) के स्वामी शुभकारक और त्रिषडाय (३ । ६ । ११) के स्वामी पापकारक होते हैं। तथा केन्द्र (४ । ७ । १०) के स्वामी शुभग्रह हों तो अशुभकारक और पापग्रह हों तो शुभकारक होते हैं तथा (२ । १२ । ८) के स्वामी साहचर्य और स्थानान्तर के अनुकूल फल देते हैं। एवं भावेशों में ४ प्रकार के तात्कालिक स्वभावगुण सिद्ध हुए।

इसी से "प्रबलाश्चोत्तरम्" इसकी भी युक्ति सिद्ध होती है, जैसे— धन के व्यय करने में कोई बहादुरी नहीं है। अतः लग्नेश सामान्य बली, उसकी अपेक्षा शत्रु या रोग के नाश करने में बल का प्रयोजन होता है, इसलिए लग्नेश से पञ्चमेश बली सिद्ध हुआ। तथा शत्रु के नाश करने की अपेक्षा से कर्म (संसार बन्धन) को हटाने में विशेष बल की आवश्यकता होती है, अतः पञ्चमेश की अपेक्षा नवमेश बली सिद्ध हुआ।

एवं सामान्य सुख (४) के व्यय से सामान्य कष्ट होने के कारण तृतीयेश सामान्य बली। उसकी अपेक्षा स्त्री (७) के व्यय में विशेष कष्ट होने के कारण तृतीयेश से षष्ठेश बली हुआ। इसकी अपेक्षा व्यय के व्यय करने (रोक देने) से तो भोजनाच्छादन भी बन्द होने से अत्यन्त कष्ट होता है; इसलिये षष्ठेश से भी एकादशेश बली समझा गया है।

इसी प्रकार द्वितीयेश से द्वादशेश, द्वादशेश से भी अष्टमेश बली है। तथा चतुर्थेश से सप्तमेश और सप्तमेश से दशमेश बली सिद्ध होता है।

अष्टमेश के अशुभत्व में प्रमाण श्लोक—

"भाग्ये दृढे सर्वसुखं करस्थं भाग्ये विनष्टे सकलं विनष्टम्।
भाग्यव्ययाधीशतया हि तस्मात् प्रोक्तोऽष्टमेशोऽत्यशुभो मुनीन्द्रैः॥

स्पष्टार्थ।

तथा लग्नेश के शुभत्व में प्रमाण श्लोक—

शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनं धनादयस्तस्य भवन्ति पोषकाः।
सदा सुखेच्छैव शरीररक्षितुस्ततोऽत्र सौम्यः कथितो विलग्नपः॥

स्पष्टार्थ ॥ ९ ॥

अथ शुभग्रहाणां सामान्योक्तकेन्द्राधिपत्यदोषे पुनर्विशेषतां तथा सूर्य-चन्द्रयोरष्टमेशत्वदोषो न बलवानिति कथयति—

केन्द्राधिपत्यदोषस्तु बलवान् गुरुशुक्रयोः।
मारकत्वेऽपि च तयोर्मारकस्थानसंस्थितिः ॥१०॥
बुधस्तदनु चन्द्रोऽपि भवेत्तदनु तद्विधः।
न रन्ध्रेशत्वदोषस्तु सूर्याचन्द्रमसोर्भवेत् ॥११॥

सं०—(शुभग्रहाणां सामान्येन केन्द्राधिपत्यदोषो यः पूर्वं प्रतिपादितः सः) केन्द्राधिपत्यदोषः गुरुशुक्रयोर्बलवान् (बुधचन्द्रापेक्षयाऽधिको) भवति। 'बलवान्' इति सर्वत्र दोषविशेषणं ज्ञेयम्। 'शुभग्रहाणां' मारकत्वेऽपि तयोः (गुरुशुक्रयोरेव) दोषो बलवान् भवति। मारकत्वे मारकस्थानसंस्थितिश्चापि तयोरेव बलवती भवति। तदनु (तयोर्गुरुशुक्रयोरनु पश्चात्) बुधस्तद्विधः (केन्द्राधिपत्यदोषवान्) भवेत्। तदनु तस्य (बुधस्यानु पश्चात्) चन्द्रस्तद्विधः (केन्द्राधिपत्यदोषवान्) भवेत्। 'तथा' सूर्या-चन्द्रमसोः (रविचन्द्रयोः) रन्ध्रेशत्वदोषः (पूर्वप्रतिपादिताष्टमेशत्वदोषः बलवान् न भवेत्। सामान्यतयाऽष्टमेशत्वदोषस्तु रवि-चन्द्रयोरपि भवत्येवेति 'बलवानिति' विशेषणेन स्फुटमायाति ॥१०-११॥

वि०—शुभग्रहाणां केन्द्राधिपत्यदोषहेतुः सयुक्तिकः प्रतिपादित एव। तेषु गुरुशुक्रौ सर्वापेक्षयाऽतिशुभाविति तयोर्दोषो बलवान्। बुधस्तु पापसाहचर्यात् कदाचित् पापोऽपि भवत्यतो गुरुशुक्रापेक्षयाऽस्य दोषाल्पत्वम्। चन्द्रस्य तु पूर्णत्वे शुभत्वं, क्षीणत्वे पापत्वमिति स्वाभाविकमेवेत्यतो बुधापेक्षयाप्यस्य दोषाल्पत्वं, समुचितमेव।

तथा रन्ध्रेशत्वदोषप्रतिपादने—"लग्नाधीशोऽपि चेत् स्वयम्" इत्यनेनाष्टमेशस्य त्रिकोणाधिपत्ये, तथा स्थानान्तराधिपत्याभावे च यत् शुभसन्धातृत्वं प्रतिपादितं तदेवात्र रविचन्द्रयोरष्टमेशत्वे स्थानान्तराधिपत्याभावात्, प्रबलदोषाभावत्वमुदाहृत्य स्पष्टीकृतमिति मध्यस्थबुद्धया विवेचनीयं विपश्चिद्भिः॥ १०-११॥

भा०—शुभग्रहों का केन्द्राधिपत्य दोष जो कहा गया है वह गुरु और शुक्र का बलवान् होता है। तथा शुभग्रहों के मारकत्व (सप्तमेशत्व) होने पर भी गुरु शुक्र में ही विशेष कर मारकत्व दोष होता है। तथा केन्द्रेश होकर मारक स्थान में रहना भी गुरु शुक्र का ही विशेष दोषकारक होता है। इन दोनों से न्यून दोष तथा मारकत्व बुध में, बुध से भी न्यून चन्द्रमा में होता है। तथा अष्टमेशत्वदोष जो कहा गया है वह सूर्य और चन्द्रमा में बलवान् (प्रबल) नहीं होता है। अर्थात् सामान्य अष्टमेशजन्य दोष तो रहता है॥ १०-११॥

वि०—शुभ ग्रहों का केन्द्राधिपति होना अशुभकारकत्व सिद्ध हो चुका है, इसलिये चार शुभग्रहों में गुरु और शुक्र में विशेष शुभत्व होने के कारण विशेष दोष होना उचित ही है, क्योंकि विशेष स्वच्छ वस्तु में ही दाग विशेष दिखलाई पड़ता है। बुध कदाचित् पापग्रहों के साथ होने से पाप भी हो जाता है, इसलिये गुरु शुक्र से बुध में दोष अल्प कहा गया है। चन्द्रमा-पूर्ण रहने पर शुभ, और क्षीण रहने पर पाप कहलाता है, इसलिये बुध से भी न्यून दोष चन्द्रमा में कहा गया है।

अष्टमेश को दोषयुक्त होने पर भी शुभ स्थान का स्वामी होने से शुभ कहा गया तो सिद्ध हुआ कि अशुभ स्थान के स्वामी होने पर ही विशेष अशुभकारक होता है। तथा जो अष्टमेश दूसरे स्थान का स्वामी

न हो; उसमें उक्त दोष बलवान् नहीं हो सकता है। ऐसे केवल रवि और चन्द्रमा ही हैं जो अष्टमेश होकर स्वयं अष्टमेश मात्र रहते हैं, इसलिये इन दोनों में अष्टमेशत्व-दोष प्रबल नहीं होता है॥ १०-११॥

केन्द्राधिप होने से "पापफल नहीं देता" इस प्रकार पाप में जो सामान्य शुभत्व कहा गया है, उसमें विशेषता आगे के श्लोक में कहते हैं।

अथ पापग्रहस्य केन्द्राधिपत्ये यत् शुभत्वं प्रोक्तं तत्र विशेषतां कथयति—

कुजस्य कर्मनेतृत्वप्रयुक्ता शुभकारिता।
त्रिकोणस्याऽपि नेतृत्वे न कर्मेशत्वमात्रतः॥ १२॥

सं०—कुजस्य (पापग्रहस्य 'कुत्सितं जायते यस्मात् स कुजः परिकीर्तितः' इति नैसर्गिकपापग्रहः कुजस्तस्य।) कर्मनेतृत्वप्रयुक्ता "क्रूराश्चे" दित्यादिना केन्द्राधिपत्ये प्रतिपादिता या शुभकारिता (शुभप्रदता सा) त्रिकोणस्यापि नेतृत्वे (आधिपत्ये सति बोध्या), कर्मेशत्वमात्रतः (केवलकर्मेशत्वात् केन्द्राधिपत्यादेव) न (पूर्वोक्तशुभकारिता न भवतीत्यर्थः) ॥ १२॥

वि०—'कुत्सितं जायते यस्मात् स कुजः परिकीर्तितः।' इत्यतोऽत्र कुजशब्देन नैसर्गिकपापग्रह एव ग्राह्यः, पापमात्रस्यैव केन्द्राधिपत्ये शुभत्वकथनात्। तथा च केन्द्रपतिष्वपि प्रबलस्य कर्मेशस्यापि यदि त्रिकोणेशत्वं विना शुभकारिता न चेत् तदाऽन्यकेन्द्रपतेस्तु सुतरामेव नैवेत्यतः कर्मशब्दः केन्द्रबोधको ज्ञेयः। केन्द्रेशस्यैव शुभत्वकथनात्।

भा०—कुज (नैसर्गिक पापग्रह) के कर्मेश (केन्द्रेश) होने में जो शुभकारिता पीछे कही गई है, वह त्रिकोणपति होने से ही समझना; केवल केन्द्रेश होने से ही नहीं अर्थात् केवल केन्द्रेश मात्र होने से उसका स्वाभाविक पापत्व मात्र नष्ट होता है, अतः केन्द्रपति होकर यदि त्रिकोणपति भी हो जावे तो उसमें शुभत्व आ जाता है। इससे यह भी सिद्ध हुआ कि स्वाभाविक पापग्रह यदि केन्द्रपति होकर त्रिषडाय पति भी हो तो पापकारक ही होता है॥ १२॥

वि०—युक्तिवचनम्।

केन्द्रेशत्वेन पापानां शुभत्वं प्रतिपादितम् ।
ततोऽत्र कुजशब्देन पाप एव प्रबोधितः ॥
तथैव कर्मशब्दोऽपि केन्द्रस्थानोपलक्षकः ।
धर्मशब्दस्तथा ज्ञेयस्त्रिकोणपदबोधकः ॥
केन्द्रेशत्वेन पापानां पापत्वं चैव नश्यति ।
तदा कोणाधिपत्येन शुभत्वं तस्य संस्फुटम् ॥

पापग्रहों में केन्द्राधिपत्य होने से इतना ही शुभत्व आता है कि वह अपने पापफल को नहीं देता है, उस हालत में यदि वह किसी त्रिकोण स्थान का भी स्वामी हो तो उसमें शुभफलप्रदत्व होना उचित ही है ॥१२॥

अथ रूपरहितयोस्तमोग्रहयोः (राहु-केत्वोः) गुणमाह—

यद्यद्भावगतौ वाऽपि यद्यद्भावेशसंयुतौ ।
तत्तत्फलानि प्रबलौ प्रदिशेतां तमोग्रहौ ॥ १३ ॥

सं०—प्रबलौ (बलवन्तौ) तमोग्रहौ (राहु-केतू) यद्यद्भावगतौ (यस्मिन् यस्मिन् भावे स्थितौ) यद्यद्भावेशसंयुतौ (येन येन भावेशेन ग्रहेण सहितौ तत्तत्फलानि (तत्तद्भावराशिस्वभावानुसारेण तत्तद्भावेश-ग्रहस्वभावानुसारेण च शुभाऽशुभफलानि प्रदिशेताम् (दद्या-ताम्) ॥ १३ ॥

भा०—प्रबल होने पर भी राहु और केतु जिस-जिस भाव में और जिस-जिस भावेश के साथ रहते हैं उसी के अनुसार शुभ या अशुभ फल देते हैं ॥ १३ ॥

वि०—अत्र युक्तिवचनम्—

विमर्दकत्वादर्केन्द्वोः प्रबलावित्युदीरितौ ।
बिम्बाभावाच्च तौ स्वं स्वं फलं नो दातुमर्हतः ॥

राहु और केतु ग्रहण के द्वारा सूर्य और चन्द्र के विमर्दक होने के कारण प्रबल और पापग्रह भी माने गये हैं, तो भी आकाश में अपने बिम्ब के अभाव होने के कारण—स्वातन्त्र्य से अपने स्वभावानुसार फल नहीं दे सकते हैं। कारण कि आकाशस्थित ग्रह और नक्षत्रों के बिम्ब के

परस्पर सम्बन्ध से ही पृथ्वीस्थित शरीरधारियों को शुभाशुभ फल प्राप्त होता है। राहु और केतु तो सूर्य और चन्द्रमा के मार्ग के सम्पात (संयोग) प्रदेश रूप, बिम्बहीन है, अतः जिस समय जिस राशि में अथवा जिस भावेश के साथ रहते हैं उसी राशि अथवा भावेश के बिम्ब के स्वभावानुसार शुभ या अशुभ फलकारक कहे गये हैं ॥ १३ ॥

संज्ञाध्याये कृता स्फीता श्रीसीतारामशर्मणा ।
उडुदायप्रदीपस्य टीकेयं पूर्णतामिता ॥
इति लघुपाराशरी-टीकायां प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

अथ योगाध्यायः २

तत्र केन्द्र-त्रिकोणाधिपयोर्मिथः सम्बन्धेन योगविशेषमाह—

केन्द्रत्रिकोणपतयः सम्बन्धेन परस्परम् ।
इतरैरप्रसक्ताश्चेद्विशेषफलदायकाः ॥ १ ॥

सं०—केन्द्रत्रिकोणपतयः (केन्द्राणि च त्रिकोणानि चेति केन्द्र-त्रिकोणानि तत्स्वामिनः) परस्परं (मिथः) सम्बन्धेन (सहवासादिना) 'फलदायका भवन्ति'। चेत् (यदि ते मिथः सम्बन्धिकेन्द्रत्रिकोणपतयः इतरैः केन्द्रत्रिकोणेतरस्थानाधिपैः) अप्रसक्ताः (सम्बन्धरहिताः) तदा विशेषफलदायकाः (विशेषेण शुभफलप्रदाः) भवन्ति । चेदितरैः प्रसक्ताः सम्बन्धसहितास्तदा सामान्यशुभफलदायका इत्यर्थादेव सिद्ध्यति ॥ १ ॥

भा०—केन्द्रेश और त्रिकोणेश में परस्पर सम्बन्ध हो 'इस हालत में' यदि दूसरे स्थान (केन्द्र त्रिकोण से भिन्न स्थान) के स्वामी से सम्बन्ध (सहवास आदि) न हो तो विशेष कर शुभ फल दायक होते हैं। अर्थात् यदि दूसरे स्थान के स्वामी से भी सम्बन्ध हो तो सामान्य रूप से शुभकारक होते हैं। यह विशेष शब्द के प्रयोग से ही सिद्ध होता है।

वि०—पूर्व संज्ञाध्याय में सिद्ध हो चुका है कि केन्द्रेश (सुख ४, स्त्री ७, राज्य १० स्थान के स्वामी) अपने स्वभाव को भूल जाते हैं

उस हालत में उन (केन्द्रेश) का जैसे स्वभाव वाले ग्रहों से सम्बन्ध होगा वैसा ही फल देंगे। अतः यदि केन्द्रेश को केवल विद्याधिकारी (पञ्चमेश) वा धर्माधिकारी (नवमेश) वा इन दोनों से ही सम्बन्ध हो तो अवश्य विशेष शुभ फल देगा। यदि किसी दूसरे ३, ६ आदि पाप स्थानाधीश) से भी सम्बन्ध होगा तो सामान्यरूप से फल देगा।

उदाहरण—८वें श्लोक की टीका में जन्मलग्न कुण्डली देखिये—केन्द्र (४।७।१०) में चतुर्थेश (सुखेश) शुक्र को पञ्चमेश बुध, और नवमेश शुक्र से सहवास सम्बन्ध है इसलिये शुक्र योगकारक हुआ, तथा लग्न में है इसलिये लग्नेश (शनि) से भी सम्बन्ध हुआ अतः अपनी दशा में शुक्र पूर्ण सुखप्रद होगा। तथा सप्तमेश (सूर्य) को लग्नेश से अन्यतर और दृष्टि सम्बन्ध है, लग्नेश द्वादशेश भी है, अतः सूर्य की दशा में साधारणरूप से स्त्री का सुख होगा। तथा दशमेश मंगल नवमेश के स्थान में है इसलिये मङ्गल की दशा में राज्यवृद्धि अवश्य होनी चाहिये।

वि०—युक्तिवचनम्—

विस्मरन्ति स्वभावं स्वं जाया-राज्य-सुखाधिपाः।
शुभसम्बन्धतस्तेषां शुभत्वमुचितं स्मृतम् ॥

स्त्री, राज्य, सुख (७।४।१०) के अधिकारी अपने स्वभाव को भूल जाते हैं, अतः केवल शुभ (१।५।९) स्थान के स्वामी के सम्बन्ध होने से विशेष शुभत्व उचित ही कहा गया है। यदि उस केन्द्रेश को दूसरे से भी सम्बन्ध होगा तो सामान्य शुभत्व होगा। इसी से कहा है कि "इतरैरप्रसक्ताश्चेत्" यदि दूसरे सम्बन्ध न हो।

और यदि स्वयं त्रिकोणपति और केन्द्रपति दोषयुक्त भी हो तो विशेष फलदायकत्वयोग होता है या नहीं ? सो आगे के श्लोक में कहते हैं।

अथोक्तयोरितरैरप्रसक्तयोः परस्परसम्बन्धिकेन्द्रत्रिकोणाधिपयोः
स्वयं दोषयुक्तत्वेऽपि न योगहानिरित्याह—

केन्द्र-त्रिकोणनेतारौ दोषयुक्तावपि स्वयम्।
सम्बन्धमात्राद्बलिनौ भवेतां योगकारकौ ॥ २ ॥

सं०—केन्द्रत्रिकोणनेतारौ (इतरैरप्रसक्तौ पूर्वोक्तपरस्परसम्बन्धिनौ केन्द्रत्रिकोणाधिपौ) स्वयं दोषयुक्तौ (स्वयं दोषेण अस्तनीचगतत्वादि-रूपेण युक्तौ सहितौ) अपि सम्बन्धमात्राद् वक्ष्यमाणसम्बन्धेषु कस्मा-च्चिदपि बलिनौ योगकारकौ (शुभफलदायकौ) भवेताम्। अर्थात् पूर्वोक्तविशेषफलदायकत्वयोगो भवत्येव ॥ २ ॥

भा०—यदि उक्त केन्द्रेश और त्रिकोणेश स्वयं दोष (अस्त-नीचगत-त्वरूप) से युक्त भी हों तथापि सम्बन्धमात्र (आगे कहे हुए किसी प्रकार के भी सम्बन्ध) से योगकारक (विशेषफलदायक) होते ही हैं ॥ २ ॥

यहाँ 'सम्बन्धमात्रात्' कहने का तात्पर्य यह है कि सम्बन्ध अनेक प्रकार के होते हैं, उनमें किसी भी प्रकार का सम्बन्ध हो परञ्च दूसरे (दुष्टस्थानाधिपति) से सम्बन्धरहित हो तो योग भंग नहीं होता है। यहाँ दोष शब्द से शत्रुराशि नीचराशिगतत्व रूप ही दोष समझना। क्योंकि शत्रुराशि और नीच में निर्बल होता है, इसलिये 'बलिनौ' कहा है ॥ २ ॥

वि०—अत्र युक्तिवचनम्—

"सद्वेषोऽपि वरं विद्वान् न मूर्खो हितकारकः।
दोषः सम्बन्धिवर्गेषु विदुषा गोप्यतेऽनिशम् ॥
तस्मात् केन्द्रत्रिकोणेशाः सम्बन्धेन परस्परम्।
स्व-स्वदोषफलं नैव प्रयच्छन्तीति सुस्फुटम् ॥"

'मूर्ख हितकारक से द्वेष करने वाला विद्वान् ही अच्छा है' तथा विद्वान् अपने सम्बन्धियों में अपने दोष को छिपाता है।' इसी प्रकार त्रिकोणेश और केन्द्रेश में परस्पर सम्बन्ध मात्र हो तो अपने-अपने दुष्ट फल को नहीं देते, इसलिये योगकारकत्व ठीक ही कहा गया है ॥ २ ॥

अब सम्बन्ध मात्र से योगकारकत्व कहा गया परञ्च सम्बन्ध तो अनेक प्रकार के होते हैं—यथा १ सहवास सम्बन्ध। २ परस्पर स्थान-स्थिति सम्बन्ध। ३ अन्यतर स्थान स्थिति सम्बन्ध। ४ परस्पर दृष्टि सम्बन्ध। ५ अन्यतर दृष्टि सम्बन्ध। ६ साधर्म्य सम्बन्ध इत्यादि। इसमें कौन सम्बन्ध से योगकारकत्व हो सकता है, इस सन्देह को दूर करने

के लिये आगे के श्लोक में सम्बन्ध को स्पष्ट करते हैं।

अथ सम्बन्धस्त्वनेकविधो भवति, तत्र कः सम्बन्धो ग्राह्य इत्याह—

निवसेतां व्यत्ययेन तावुभौ धर्म्म-कर्म्मणोः।
एकत्राऽन्यतरो वाऽपि वसेच्चेद्योगकारकौ ॥ ३ ॥

सं० — उभौ (द्वौ) तौ (पूर्वोक्तौ केन्द्र-त्रिकोणनेतारौ) व्यत्ययेन (वैपरीत्येन) धर्मकर्मणोः (केन्द्र-त्रिकोणयोः) निवसेतां (केन्द्रेशः त्रिकोणे, त्रिकोणश्च केन्द्रे इति व्यत्ययेन स्थितौ स्यातामित्येकः सम्बन्धः वा उभौ तौ (द्वौ) एकत्र सहैव त्रिकोणे, केन्द्रे वा निवसेताम् तदाऽयं द्वितीयः सम्बन्धः। वाऽन्यतरः (तयोर्मध्ये कश्चिदेकः) 'व्यत्ययेन' वसेत् (केन्द्रेशः त्रिकोणे त्रिकोणेशो वा केन्द्रे तदाऽयं तृतीयः संबन्धः) तदा योगकारकौ भवेताम्। एतदन्यथासंबन्धे योगकारकौ नेत्यर्थात् सिद्ध्यति। अत्र प्रथमसम्बन्धाद् द्वितीयो न्यूनः, द्वितीयादपि तृतीयो न्यून इति फलेष्वपि न्यूनाधिकत्वमूहनीयम् ॥ ३ ॥

भा० —यदि केन्द्रेश त्रिकोण में, और त्रिकोणेश केन्द्र में इस प्रकार व्यत्यय से स्थित हों, अथवा दोनों एक ही स्थान (केन्द्र या त्रिकोण) में साथ हों, अथवा केन्द्रेश त्रिकोण में वा त्रिकोणेश केन्द्र में हो तो योगकारक होते हैं ॥ ३ ॥

वि० — यहाँ दूसरे से अप्रसक्त भी हो और परस्पर सम्बन्ध भी हो इस प्रकार केन्द्रेश और त्रिकोणेश को व्यत्यय से त्रिकोण केन्द्र में रहने ही से हो सकता है, अन्यथा नहीं। तथा त्रिकोण और केन्द्र में प्रबल स्थान होने के कारण त्रिकोण स्थान में धर्म, और केन्द्र स्थान में कर्म का प्रयोग उदाहरण रूप से दिया गया है ॥ ३ ॥

अब यहाँ यह आशङ्का उपस्थित हुई कि सब केन्द्रेश और त्रिकोणेश के सम्बन्ध से फल तुल्य ही होगा, या कुछ न्यूनाधिक भी। इसको दूर करने के लिये आगे के श्लोक में लिखते हैं —

अथ योगेष्वपि स्थानवशादुत्कृष्टतामाह—

त्रिकोणाधिपयोर्मध्ये सम्बन्धो येन केनचित्।

केन्द्रनाथस्य बलिनो भवेद्यदि सुयोगकृत् ॥ ४ ॥

सं०—त्रिकोणाधिपयोः (बलिनोः पञ्चमनवमाधिपयोर्मध्ये) येन केनचित् (पञ्चमेशेन, नवमेशेन वा) बलिनः केन्द्रनाथस्य (दशमेशस्य) यदि सम्बन्धो भवेत् (तदाऽसौ सम्बन्धः) सुयोगकृत् (अत्युत्तमयोग-कारको) भवेत्। एतेनाऽन्यकेन्द्रशत्रिकोणेशसम्बन्धाद् बलक्रमादेव योगेषूत्तमाऽधमताऽपि सूचिता ॥ ४ ॥

भा०—पञ्चमेश अथवा नवमेश इन दोनों में किसी एक से यदि दशमेश का सम्बन्ध हो तो सुयोग (उत्कृष्ट योग) कारक होता है।

अर्थात् केन्द्रेश में सबसे वली दशमेश हैं उससे उत्तमयोग कहा गया तो सप्तमेश और चतुर्थेश के संवन्ध से उससे न्यूनयोग, तथा नवमेश की अपेक्षा पञ्चमेश के साथ और पञ्चमेश की अपेक्षा लग्नेश के साथ संवन्ध से कुछ न्यूनयोग सिद्ध होता है ॥ ४ ॥

अथ योगस्य कदा लाभो भवतीत्याह—

दशास्वपि भवेद् योगः प्रायशो योगकारिणोः।
दशाद्वयीमध्यगतस्तदयुक्शुभकारिणाम् ॥ ५ ॥

सं०—तदयुक्शुभकारिणां (तयोर्योगकारिणोरयुजां संबन्धरहितानां शुभकारिणां दशास्वपि महादशास्वपि) योगकारिणोः (योगकारकयोः केन्द्रत्रिकोणेशयोः) दशाद्वयीमध्यगतः (एकस्यान्तर्दशाऽन्यस्य विदशेति दशाद्वयी तद्गत एव) प्रायशः (विशेषेण) योगः (योगफललाभो) भवेत्। योगकारकसंबन्धिशुभानां दशासु त्ववश्यमेव योगलाभो भवत्येवेत्यपि शब्दात् सूचितम् ॥ ५ ॥

भा०—पूर्वोक्तयोगकारक (केन्द्रेश, त्रिकोणेश) से संबन्धरहित शुभकारक ग्रह की दशा में भी जब एक योगकारक की अन्तर्दशा और दूसरे की प्रत्यन्तर्दशा होती है तब विशेषतया योगफल प्राप्त होता है। अर्थात् संवन्धी शुभकारक की दशा में तो अवश्य ही पूर्णरूप फल प्राप्त होना सिद्ध है ॥ ५ ॥

वि०—अत्र युक्तिवचनम्—

जनानां हितकार्यस्य साधुर्भवति साधकः।
स्वार्थं विनाऽपि संसारे खलस्तस्य प्रबाधकः॥
योगकारकयोः काय स्वदशासु तथैव हि।
वर्धयन्ति शुभा योगं संबन्धरहिता अपि॥

संसार में जो साधु हैं वे निःस्वार्थ लोगों के हित कार्य के साधक होते हैं। तथा दुष्ट लोग बिना स्वार्थ से भी लोगों के हितकार्य में बाधक होते हैं। इसी प्रकार—योगकारक ग्रहों से संबन्धहीन भी शुभ ग्रह अपनी दशा में योगफल देने में सहायक होकर योगफल की प्राप्ति करा देते हैं। क्योंकि योगकारक ग्रह सर्वदा अपने फल देने के लिए यद्यपि उद्यत रहता है तथापि पापग्रह अपनी दशा में उसके बाधक हो जाते हैं, और शुभग्रह उसके साधक होते हैं। इसलिये शुभग्रह की दशा में ही दोनों योगकारकों की अन्तर प्रत्यन्तर दशा आने पर योगफल का लाभ उचित कहा गया है॥ ५॥

अब यहाँ यह प्रश्न है कि शुभ ग्रह तो बिना संबन्ध के भी अपनी दशा में योगफल देते हैं। तथा पापग्रह संबन्धी होने पर भी योगफल देनेमें सहायक हो सकते हैं या नहीं? इसके उत्तर आगे के श्लोक में कहते हैं—

यथाऽसंबन्धिनोऽपि शुभाः योगफलं प्रयच्छन्ति, तथा पापाः संबन्धिनो भूत्वा योगफलं प्रयच्छन्तीत्याह—

योगकारकसम्बन्धात् पापिनोऽपि ग्रहाः स्वतः।
तत्तद्भुक्त्यनुसारेण दिशेयुर्योगजं फलम्॥ ६॥

सं०—स्वतः पापिनोऽपि (नैसर्गिकपापास्तात्कालिका वा पापाः) ग्रहाः योगकारकसंबन्धात् (योगकारकयोः पूर्वोक्तस्थानसंबन्धवशात्) तत्तद्भुक्त्यनुसारेण (तस्य तस्य योगकारकस्य भुक्तयोऽन्तर्दशाविदशादयस्तदनुसारेण) योगजं फलं दिशेयुः (दद्युः)॥ ६॥

भा०—(स्वाभाविक, वा तात्कालिक) स्वयं पापकारक ग्रह भी योगकारक ग्रह के सम्बन्ध से अपनी दशा में योगकारक की अन्तर्दशा और प्रत्यन्तर्दशा में योगफल देते हैं॥ ६॥

वि०—अत्र युक्तिवचनम्—

सम्बन्धे सति साधूनां खलोऽपि हितसाधकः।
तद्वत् पापोऽपि सम्बन्धे सति योगफलप्रदः॥

यह प्रसिद्ध है कि अत्यन्त दुष्ट लोग भी किसी प्रकार के सम्बन्ध होने से साधु के हितसाधक हो ही जाते हैं। इसी प्रकार पापग्रह भी शुभयोगकारक ग्रहों के साथ सम्बन्ध होने के कारण अपनी दशा में योगकारक की अन्तर्दशा में शुभफल दायक कहे ग हैं॥ ६॥

अथैकग्रहस्यैव केन्द्रत्रिकोणाधिपत्ये योगाकारकत्वं तत्रोत्कृष्टतां चाऽऽह—

केन्द्रत्रिकोणाधिपयोरेकत्वे योगकारिता।
अन्यत्रिकोणपतिना सम्बन्धो यदि किं परम्॥ ७॥

सं०—केन्द्रत्रिकोणाधिपयोः (योगकारकत्वेन, यौ केन्द्रेशत्रिकोणेशावुक्तौ तयोः) एकत्वे केन्द्रेश एव त्रिकोणेशोऽपि चेदित्यर्थः तदा योगकारिता स्यात्। तत्र अन्यत्रिकोणपतिना यदि सम्बन्धस्तदा किं परम् (न किमप्यतः परमुत्कृष्टयोगत्वमित्यर्थः)॥ ७॥

भा०—यदि एक ही ग्रह केन्द्र और त्रिकोण दोनों का स्वामी हो तो भी योगकारक होता है। उसका यदि दूसरे त्रिकोणेश से भी सम्बन्ध हो जाय तो इससे बड़ा शुभयोग क्या हो सकता है? ७॥

वि०—अत्र युक्तिवचनम्—

विद्वान् राज्याधिकारी चेत् प्रददाति प्रजासुखम्।
धर्माधिकारिसंबन्धो यदि तस्य विशेषतः॥

जो राज्यादि सुख का अधिकारी, विद्वान् (विद्याधिकारी) भी हो तो अवश्यमेव लोगों को सुखदायक होता है। अगर उसको धर्माधिकारी (धर्मात्मा) का भी संबन्ध हो जाय तो फिर कहना ही क्या है। इसी प्रकार केन्द्रपति (राज्यादि स्थान का पति) विद्याधिकारी (विद्याभावेश) भी हो तो योगकारक होना ही चाहिये। यदि उसको धर्मेश से भी संबन्ध हो जाय तो विशेषकर योगकारकत्व होना उचित ही कहा गया है।

उदाहरण—जैसे पूर्वोक्त कुण्डली में चतुर्थेश और नवमेश एक ही (शुक्र) है, इससे शुक्र योगकारक हुआ। परञ्च शुक्र को पञ्चमेश बुध से सहवास संबन्ध भी है, अतः विशेषयोगकारक हुआ ॥ ७ ॥

अथ पूर्वं "यद्यद्भावगतौ वाऽपि" त्यादिना तमो-ग्रहयोः (राहु-केत्वोः) शुभाऽशुभत्वं प्रतिपादितमत्र पुनः स्फुटार्थं तयोर्योगकारकत्वं प्रतिपादयति-

यदि केन्द्रे त्रिकोणे वा निवसेतां तमोग्रहौ।
नाथेनाऽन्यतरेणापि सम्बन्धाद्योगकारकौ ॥ ८ ॥

सं०—यदि तमोग्रहौ अन्धरूपौ "अन्धं तु तिमिरे क्लीबं चक्षुर्हीनेऽभिधेयवत्" राहु-केतू केन्द्रे वा त्रिकोणे निवसेताम् तथाऽन्यतरेण नाथेन (केन्द्रे स्थितौ चेत् त्रिकोणाधिपेन, त्रिकोणे स्थितौ चेत् केन्द्र-नाथेन) सम्बन्धात् योगकारकौ भवेताम् ॥ ८ ॥

अत्र परस्परसम्बन्धवशादेव "योगकारत्वात्" केन्द्रस्थितयोः केन्द्रेशेन, त्रिकोणस्थितयोः त्रिकोणेशेन सम्बन्धान्न योगकारकत्वमित्य-तिरोहितमेव दैवविदाम् ॥ ८ ॥

भा०—यदि तमोग्रह (राहु वा केतु) केन्द्र में हो और त्रिकोणेश से सम्बन्ध हो, अथवा त्रिकोण में हो और केन्द्रेश से सम्बन्ध हो तो शुभयोगकारक होता है ॥ ८ ॥

वि०—अत्र युक्तिवचनम्—

अन्धा यथाऽत्र संसारे बलबुद्धियुता अपि।
तादृङ् मार्गेण गच्छन्ति यादृङ् मार्गप्रदर्शकः ॥
अन्धग्रहौ भगोलेऽपि तथा यादृग-ग्रहान्वितौ।
यादृक्स्थानगतौ वाऽपि स्यातां तादृक्फलप्रदौ ॥

संसार में बल और बुद्धि रहने पर भी अन्धे लोग, मार्ग बतलाने वाले के अनुसार ही सुमार्ग या कुमार्ग पर चलते हैं। उसी प्रकार तम (अन्धकार) रूप राहु केतु भी जिस स्थान में जैसे ग्रह के साथ हो जाते हैं उसी प्रकार का फल देते हैं तो उचित ही है ॥ ८ ॥

अब—"केन्द्र-त्रिकोणनेतारौ दोषयुक्तावपि स्वयम्" इत्यादि श्लोक से केन्द्रेश और त्रिकोणेश के दोषेयुक्त होने पर भी परस्पर सम्बन्ध मात्र से योगकारकत्व कहा, इससे—"त्रिषडायादि" दुष्ट स्थान के आधिपत्य-रूप दोष का ग्रहण नहीं करना चाहिये। वहाँ अस्त-नीच-शत्रुराशि से सम्बन्धरूप दोष ही ग्रहण करना चाहिए, इसी को स्पष्ट करने के निमित्त आगे का श्लोक कहते हैं ॥ ८ ॥

अथ "दोषयुक्तावपि स्वयम्" इत्यत्र केनचित्। त्रिषडायाधि-पत्यजन्यदोषो न ग्राह्यः। केन्द्रेश-त्रिकोणेशयोस्त्रिषडाया-दिदुःस्थानाधिपत्ये तु प्रायो योगभङ्गो भवतीत्ये-वोदाहृत्य विशेषं कथयति—

धर्म-कर्माधिनेतारौ रन्ध्र-लाभाधिपौ यदि।
तयोः सम्बन्धमात्रेण न योगं लभते नरः ॥ ९ ॥

सं०—धर्मकर्माधिनेतारौ (नवमेश-दशमेशौ एव) यदि रन्ध्रलाभा-धिपौ (अष्टमैकादशेशौ 'नवमेश एवाष्टमेशः, अथवा दशमेश एवैका-दशेशोऽपि चेत्' तदा तयोः (एतादृश-केन्द्रत्रिकोणेशयोः) सम्बन्धमात्रेण (केवलसम्बन्धेनैव) नरः (जातकः) योगं (भाग्ययोगं) न लभते (न प्राप्नोति)। अर्थादेवम्भूतसम्बन्धे स्वोच्चादिसत्स्थानगतत्वादिरूपं योगान्तरमपि चेत् तदा योगं लब्धुं शक्नोतीत्येवाऽत्र 'मात्र'—शब्दप्रयोगेन सूचितवानाचार्यः। तथैतेनैव—यः केन्द्रेशो, यस्त्रिकोणेशो वा त्रिषष्ठादि-स्थानाधिपोऽपि तयोः सम्बन्धमात्रेण न योगलाभ इत्यपि स्फुटमेव सिद्ध्यति ॥ ९ ॥

भा०—जो नवमेश ही अष्टमेश भी हो, तथा जो दशमेश ही एका-दशेश भी हो इस प्रकार के नवमेश और दशमेश के सम्बन्धमात्र से ही लोग योग का लाभ नहीं कर सकते ॥ ९ ॥

अर्थात् केन्द्रेश और त्रिकोणेश को स्वयं दोषयुक्त होने पर भी सम्बन्धमात्र से योगकारक कहा गया है, वह नीचतादि स्थानस्थिति-जन्यदोष समझना। त्रिषडाय आदि स्थान के आधिपत्य होने पर सम्बन्ध मात्र से योग का भङ्ग हो जाता है ॥ ९ ॥

वि०—यहाँ भी "सम्बन्धमात्रेण" इस शब्द से यह सिद्ध होता है कि केन्द्रेश—त्रिकोणेश के त्रिषडायादि स्थानाधिपत्यादि होने पर भी यदि सम्बन्ध हो उस हालत में उच्चस्थानस्थित्यादि अन्य योग भी हो तो योग भङ्ग नहीं हो सकता है।

त्रिकोण में धर्म (९) केन्द्र में (१०), द्वितीयद्वादशाष्टम में (८) त्रिषडाय में (११) स्थान बली है, इसलिये इन्हीं चार स्थानों के सम्बन्ध से उदाहरण दिखलाया गया है। योग के लाभ और भङ्ग में प्राबल्य वा दौर्बल्य स्थानों के तारतम्य से ही समझना।

कोई—'धर्मकर्माधिनेतारौ यौ, तथा रन्ध्रलाभाधिपौ यौ तयोः सम्बन्धमात्रेण नरो योगं न लभते' इस प्रकार अन्वय करते हैं। अर्थात् "त्रिकोणेश केन्द्रेश के सम्बन्ध में अष्टमेश एकादशेश का सम्बन्ध हो तो योग का लाभ नहीं होता है" इस प्रकार अर्थ करते हैं।

यदि आचार्य का यही आशय रहता तो—"रन्ध्रलाभाधिपौ च यौ" ऐसा ही पाठ रखते। तथा त्रिकोणेश, वा केन्द्रेश से अष्टमेश, वा एकादशेश के सम्बन्ध से योग कहा भी नहीं है, तो फिर उसका भङ्ग कहना ही व्यर्थ है। अथवा "इतरैरप्रसक्ताश्चेत्" इसी से सिद्ध है–कि दूसरे स्थान के स्वामी के सम्बन्ध से विशिष्ट योग नहीं होता है। अतः पुनरुक्तदोष भी हो जायगा। इससे पूर्व प्रतिपादित अर्थ ही अभिप्रेत है।

वि०—अत्र युक्तिवचनम्—

यो धर्मविद् धर्मविघातकोऽपि यः कर्मविज्ञो व्ययमातनोति।
सम्बन्धमात्रेण तयोः कथं स्याद् धर्मस्य वा राज्यसुखस्य वृद्धिः॥

जो धर्मज्ञाता धर्म का नाशक भी हो, तथा जो कर्मज्ञाता व्यय (कर्म सम्पन्नता के लिये खर्चा) को हटाने वाला भी हो, इस प्रकार के धर्माधिकारी और कर्माधिकारी के सम्बन्धमात्र से धर्म और राज्य सुख आदि की वृद्धि किस प्रकार हो सकती है ? (अर्थात् नहीं होती है)।

अतः जो धर्मेश (नवमेश), अष्टमेश (धनव्ययकारक) भी हो, और जो कर्मेश (दशमेश), एकादशेश (व्यय के रोकने वाला) भी

हो तो इन दोनों के सम्बन्ध से शुभयोग का लाभ नहीं होगा यह उचित ही कहा गया है॥ ९॥

योगाध्याये कृता स्फीता श्रीसीतारामशर्मणा।
उडुदायप्रदीपस्य टीकेयं पूर्णतामिता॥

इति लघुपाराशरीटीकायां द्वितीयोऽध्यायः॥ २॥

—:०:—

अथाऽऽयुर्विचाराध्यायः ३

तत्रादावायुर्दायस्थानं मारकस्थानं च कथयति—

अष्टमं ह्यायुषः स्थानमष्टमादष्टमं च यत्।
तयोरपि व्ययस्थानं मारकस्थानमुच्यते॥ १॥
तत्राप्याद्यव्ययस्थानाद्द्वितीयं बलवत्तरम्।

सं०–अष्टमं (लग्नादष्टमस्थानं) हि (निश्चयेन) आयुषः (आयुर्दायस्य) स्थानं, च (पुनः) अष्टमात् यदष्टमं (अर्थात् लग्नात् तृतीयं) तदपि 'आयुषः' स्थानम् उच्यते (कथ्यते)। तयोः (अष्टम-तृतीययोः) अपि यत् व्ययस्थानं (द्वादशस्थानं अर्थात् लग्नात् सप्तमं, द्वितीयं च) 'तत्' मारकस्थानं उच्यते। तत्रापि (तयोर्मारकस्थानयोर्मध्येऽपि) आद्यव्ययस्थानात् (सप्तमात्) द्वितीयं (द्वितीयमारकस्थानं लग्नाद् द्वितीयमित्यर्थः) बलवत्तरम् (प्रबलं कथ्यते)॥ १॥

भा०–लग्न से अष्टम और तृतीय ये दोनों आयुर्दाय के स्थान हैं। और इन दोनों के व्ययस्थान (अर्थात् लग्न से सप्तम और द्वितीय) ये दोनों मारक स्थान कहलाते हैं॥ १॥

इन मारकस्थान (७।२) में भी प्रथम मारकस्थान (७) से दूसरा मारकस्थान (२) प्रबल है॥ १ + ½॥

वि०—युक्तिवचनम्—

विक्रमेण विना नृणां जीवनं मरणोपमम्।
लग्नात् तृतीयकं तस्मादायुः स्थानं स्मृतं बुधैः॥

विक्रमस्य व्ययः कष्ट-प्रद आयुर्व्ययादपि।
तेनाऽत्र सप्तमादुक्तं द्वितीयं बलवत्तरम्॥

अष्टम आयुर्दायस्थान है, इसकी युक्ति पूर्व ही सिद्ध हो चुकी है तथा पराक्रम (शक्ति) बिना जीवन भी मरण के समान ही है। अतः पराक्रम ही मुख्य जीवन माना जाता है, इसलिये तृतीय स्थान भी आयुर्दाय का ही माना गया है। आयुर्दाय के व्ययकारक होने के कारण सप्तम और द्वितीय मारक स्थान उचित ही कहे गये हैं। तथा आयुर्दाय के क्षय से भी पराक्रम का नाश होना कष्टकर है, इसलिये सप्तम से द्वितीय प्रबल कहा गया है॥ १+½॥

अथ मारकग्रहस्य (मरणकालस्य च) निर्णयमाह—

तदीशितुस्तत्र गताः पापिनस्तेन संयुताः॥ २॥
तेषां दशाविपाकेषु सम्भवे निधनं नृणाम्।
तेषामसम्भवे साक्षाद्व्ययाधीशदशास्वपि॥ ३॥

सं०— तदीशितुः (तस्य मारकस्थानस्येशितुः स्वामिनः, सप्तमेशस्य द्वितीयेशस्य वा) दशाविपाकेषु (दशाऽन्तर्दशाकालेषु) सम्भवे (नक्षत्रायुषः समाप्तिसमये प्राप्ते) 'सति' नृणां (जनानां) निधनं (मरणं) भवति। 'तदसम्भवे' तत्र गताः (तस्मिन् मारकस्थाने स्थिताः) तेन (मारकेशेन) संयुता 'ये' पापिनः (पापफलप्रदाः) तेषां दशाविपाकेषु सम्भवे सति नृणां निधनं भवितुमर्हति। तेषां (तत्र गतानां, तेन युतानां पापिनां) असम्भवे (यदि न कश्चित् तत्र गतः न कश्चित् तेन युतस्तदा) साक्षाद्व्ययाधीशदशास्वपि (लग्नतो द्वादशस्थानाधिपदशान्तर्दशासु च) नृणां निधनं भवति॥ २-३॥

("नक्षत्रायुः कलौ युगे" इस वचन के अनुसार नक्षत्रायुर्दाय साधन करके जो वर्षादि प्रमाण आता है, ठीक उसी समय में किसी का मरण हो जाय ऐसा नियम नहीं है, उससे आगे-पीछे भी प्रबल मारकेश की दशा अन्तर्दशा प्राप्त होने पर मरण होता है, इसी विषय के स्पष्टार्थ मारकेश का निर्णय कहते हैं।)

भा०—उक्त मारक स्थान (२।७) के स्वामी की दशा अन्तर्दशा समय में, वा मारक स्थान में जो पापी ग्रह हों, वा मारकेश ग्रह के साथ में जो पापी ग्रह हों उनकी दशा अन्तर्दशा समय में सम्भव रहने पर (गणितागत आयुर्दाय की समाप्ति समय उपस्थित होने पर) प्राणियों का मरण होता है। इनके असम्भव होने पर (अर्थात् मारक स्थान में कोई भी पाप-फलद ग्रह न हो, तथा मारकेश के साथ भी कोई पापी ग्रह न हो तो उस हालत में) लग्न से द्वादशाधीश ग्रह की दशा में मारकेश की अन्तर्दशा आने पर मरण होता है॥ २-३॥

वि०— मारकस्थान (२-७) के स्वामी और उनके सम्बन्धी (अर्थात् मारक स्थान में रहनेवाला, वा मारकेश के साथ रहनेवाला) पापी (त्रिषडायादि स्थान के स्वामी) ग्रह—ये तीन प्रकार के मुख्य मारक हैं। इनमें भी द्वितीयेश सबसे प्रबल, उससे न्यून सप्तमेश, उससे न्यून द्वितीय स्थान में रहनेवाला, उससे न्यून द्वितीयेश के साथ रहनेवाला, उससे न्यून सप्तम में रहनेवाला, उससे भी न्यूनबल सप्तमेश के साथ रहनेवाला पापी ग्रह मारक होता है। इनमें जो प्रबल मारक हो उनमें से किसी एक की दशा और दूसरे की विपाक (अन्तर्दशा) आने पर सम्भव रहने पर मरण समझना। इन (मारक सम्बन्धी ग्रहों) के असम्भव होने पर द्वादशेश की दशा में मारकेश की अन्तर्दशा आने पर मरण होता है॥ २-३॥

अथ मारकग्रहदशाकालस्याऽलाभे निर्णयमाह—

अलाभे पुनरेतेषां सम्बन्धेन व्ययेशितुः।
क्वचिच्छुभानां च दशास्वष्टमेशदशासु च॥ ४॥
केवलानां च पापानां दशासु निधनं क्वचित्।
कल्पनीयं बुधैर्नृणां मारकाणामदर्शने॥ ५॥

सं०—पुनरेतेषां (पूर्वोक्तमारकानां) अलाभे (अप्राप्तदशासमये) 'सति' क्वचित् व्ययेशितुः (व्ययो मारकस्थानं "तयोरपि व्ययस्थानमित्युक्तेः" तदीशितुः मारकेशस्येत्यर्थः) सम्बन्धेन (सहवासरूपेण) शुभानां च

(शुभप्रदानामपि) दशासु, क्वचिदष्टमेशदशासु च निधनं भवति। एतेषामपि मारकाणामदर्शने (अलाभे) क्वचित् केवलानां (मारकेशसम्बन्धरहितानां) पापानां दशासु च बुधैः (विचारशीलैर्विद्वद्भिः) नृणां निधनं (मरणं) कल्पनीयम् (विचार्यम्) ॥ ४-५ ॥

भा०—कदाचित् उपरोक्त मारकेशों की दशा समय अप्राप्त होने पर व्ययेश (द्वादशेश, उपलक्षण से मारकेश) के सम्बन्धी शुभग्रहों की दशा में भी; और कदाचित् अष्टमेश की दशा में भी मरण होता है। कदाचित् इन (मारकेश के सम्बन्धी शुभ, और अष्टमेश) की दशा भी अप्राप्त हो तो केवल (मारकेश के सम्बन्ध बिना भी) पापफलद ग्रहों की दशा में प्राणियों का मरण होता है, ऐसा पण्डितों को विचार करना चाहिये॥

वि०—पूर्वोक्त मारकेशों में द्वादशेश निर्बल है; उसके साथ के सम्बन्ध से भी यदि शुभग्रह में मारकत्व आता है, तो मुख्य मारकेश (द्वितीयेश और सप्तमेश) के सम्बन्ध से निश्चय मारकत्व सिद्ध होता है। अथवा 'व्यय' शब्द यहाँ मारक स्थान का ही बोधक है। क्योंकि "तयोरपि व्ययस्थानं मारकस्थानमुच्यते'; ऐसा उक्त भी है। तथा सम्बन्ध, परस्पर स्थान में या साथ में रहना ही समझना चाहिये ॥ ४-५ ॥

अथ मारकत्वे शनेः प्रबलतामाह—

मारकैः सह सम्बन्धान्निहन्ता पापकृच्छनिः।
अतिक्रम्येतरान् सर्वान् भवत्येव न संशयः॥ ६॥

सं०—पापकृत् (त्रिषडायादिपापस्थानाधिपत्येन पापकारकः) शनिः मारकैः द्वितीयेश-सप्तमेश-द्वादशेशः) सह सम्बन्धात् इतरान् सर्वान् (मारकग्रहान्) अतिक्रम्य (उल्लङ्घ्य) निहन्ता (मारको) भवत्येव 'अत्र' संशयो न। अर्थान्मारकसम्बन्धरहितोऽपि पापकृत् शनिर्मारक एवेति सिद्ध्यति ॥ ६ ॥

भा०—३, ६ आदि अशुभस्थान के आधिपत्य से पापकारक शनि को मारक ग्रहों से सम्बन्ध हो तो अन्य सब मारक को हटाकर (उल्लंघन कर) वही (शनि ही) मारक होता है, इसमें सन्देह नहीं। अर्थात् बिना मारक के सम्बन्ध से भी पापकारक शनि सामान्यरूप से मारक होता है ॥ ६ ॥

वि०—युक्ति वचनम्—

शनिस्तु यम एवातो विख्यातो मारकः पुनः।
अन्यमारकसम्बन्धात् प्राबल्यं तस्य संस्फुटम् ॥

शनि स्वयं यम हैं अतः स्वभाव से भी मारक हैं, उस पर भी त्रिषडाय आदि स्थान के आधिपत्य से पापकारक हों तो प्रबल मारक होता है, फिर भी यदि मारक ग्रहों से सम्बन्ध हो जाय तो सबसे प्रबल मारक होने में संशय नहीं करना, उचित ही कहा गया है ॥ ६ ॥

लिखिताऽऽयुर्विचारेऽस्मिन् श्रीसीतारामशर्मणा।
उडुदायप्रदीपस्य टीकेयं पूर्णतामिता ॥
इति लघुपाराशरीटीकायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

—:०:—

अथ दशाफलाध्यायः ४

तत्र ग्रहाः स्वानुरूपं दशाफलं कदा दिशन्तीत्याह—

न दिशेयुर्ग्रहाः सर्वे स्व-दशासु स्व-भुक्तिषु।
शुभाऽशुभफलं नृणामात्मभावानुरूपतः॥ १॥
आत्मसम्बन्धिनो ये च ये वा निजसधर्मिणः।
तेषामन्तर्दशास्वेव दिशन्ति स्वदशाफलम् ॥ २॥

सं०—सर्वे (शुभफलप्रदाः, पापफलप्रदाश्च सकलाः) ग्रहाः स्वदशासु स्वभुक्तिषु (स्वान्तर्दशासु) आत्मभावानुरूपतः (आत्मनो यो भावः स्वभावो, वा तन्वादिषु य आत्मनो भावस्तदनुसारतः) नृणां (जनानां) शुभाऽशुभफलं न दिशेयुः (न दद्युः) ॥ १-२ ॥

"न दिशेयुरिति सम्भावनायां लिङ्" एतेन ग्रहाः स्वदशायां स्वान्तर्दशासु स्व-स्वभावानुसारं सम्यक् फलं न दिशन्ति, यत् किञ्चित् फलं तु

(शुभप्रदानामपि) दशासु, क्वचिदष्टमेशदशासु च निधनं भवति। एतेषामपि मारकाणामदर्शने (अलाभे) क्वचित् केवलानां (मारकेशसम्बन्धरहितानां) पापानां दशासु च बुधैः (विचारशीलैर्विद्वद्भिः) नृणां निधनं (मरणं) कल्पनीयम् (विचार्यम्) ॥ ४-५ ॥

भा०--कदाचित् उपरोक्त मारकेशों की दशा समय अप्राप्त होने पर व्ययेश (द्वादशेश, उपलक्षण से मारकेश) के सम्बन्धी शुभग्रहों की दशा में भी; और कदाचित् अष्टमेश की दशा में भी मरण होता है। कदाचित् इन (मारकेश के सम्वन्धी शुभ, और अष्टमेश) की दशा भी अप्राप्त हो तो केवल (मारकेश के सम्बन्ध बिना भी) पापफलद ग्रहों की दशा में प्राणियों का मरण होता है, ऐसा पण्डितों को विचार करना चाहिये ॥

वि० -पूर्वोक्त मारकेशों में द्वादशेश निर्बल है, उसके साथ के सम्बन्ध से भी यदि शुभग्रह में मारकत्व आता है, तो मुख्य मारकेश (द्वितीयेश और सप्तमेश) के सम्बन्ध से निश्चय मारकत्व सिद्ध होता है। अथवा 'व्यय' शब्द यहाँ मारक स्थान का ही बोधक है। क्योंकि "तयोरपि व्ययस्थानं मारकस्थानमुच्यते"; ऐसा उक्त भी है। तथा सम्बन्ध, परस्पर स्थान में या साथ में रहना ही समझना चाहिये ॥ ४-५ ॥

अथ मारकत्वे शनेः प्रबलतामाह—

मारकैः सह सम्बन्धान्निहन्ता पापकृच्छनिः ।
अतिक्रम्येतरान् सर्वान् भवत्येव न संशयः ॥ ६ ॥

सं०--पापकृत् (त्रिषडायादिपापस्थानाधिपत्येन पापकारकः) शनिः मारकैः द्वितीयेश-सप्तमेश-द्वादशेशः) सह सम्बन्धात् इतरान् सर्वान् (मारकग्रहान्) अतिक्रम्य (उल्लङ्घ्य) निहन्ता (मारको) भवत्येव 'अत्र' संशयो न। अर्थान्मारकसम्बन्धरहितोऽपि पापकृत् शनिर्मारक एवेति सिद्ध्यति ॥ ६ ॥

भा०—३, ६ आदि अशुभस्थान के आधिपत्य से पापकारक शनि को मारक ग्रहों से सम्बन्ध हो तो अन्य सब मारक को हटाकर (उल्लंघन कर) वही (शनि ही) मारक होता है, इसमें सन्देह नहीं। अर्थात्

बिना मारक के सम्बन्ध से भी पापकारक शनि सामान्यरूप से मारक होता है ॥ ६ ॥

वि०—युक्तिवचनम्—

शनिस्तु यम एवातो विख्यातो मारकः पुनः ।
अन्यमारकसम्बन्धात् प्राबल्यं तस्य संस्फुटम् ॥

शनि स्वयं यम हैं अतः स्वभाव से भी मारक हैं, उस पर भी त्रिषडाय आदि स्थान के आधिपत्य से पापकारक हो तो प्रबल मारक होता है, फिर भी यदि मारक ग्रहों से सम्बन्ध हो जाय तो सबसे प्रबल मारक होने में संशय नहीं करना, उचित ही कहा गया है ॥ ६ ॥

लिखिताऽऽयुर्विचारेऽस्मिन् श्रीसीतारामशर्मणा ।
उडुदायप्रदीपस्य टीकेयं पूर्णतामिता ॥
इति लघुपाराशरीटीकायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

—:०:—

अथ दशाफलाध्यायः ४

तत्र ग्रहाः स्वानुरूपं दशाफलं कदा दिशन्तीत्याह—

न दिशेयुर्ग्रहाः सर्वे स्व-दशासु स्व-भुक्तिषु ।
शुभाऽशुभफलं नृणामात्मभावानुरूपतः ॥ १ ॥
आत्मसम्बन्धिनो ये च ये वा निजसधर्मिणः ।
तेषामन्तर्दशास्वेव दिशन्ति स्वदशाफलम् ॥ २ ॥

सं०--सर्वे (शुभफलप्रदाः, पापफलप्रदाश्च सकलाः) ग्रहाः स्वदशासु स्वभुक्तिषु (स्वान्तर्दशासु) आत्मभावानुरूपतः (आत्मनो यो भावः स्वभावो, वा तन्वादिषु य आत्मनो भावस्तदनुसारतः) नृणां (जनानां) शुभाऽशुभफलं न दिशेयुः (न दद्युः) ॥ १-२ ॥

"न दिशेयुरिति सम्भावनायां लिङ्" एतेन ग्रहाः स्वदशायां स्वान्तर्दशासु स्व-स्वभावानुसारं सम्यक् फलं न दिशन्ति, यत् किञ्चित् फलं तु

दिशन्त्येवेति स्पष्टमेवाऽवगम्यते। अतः सम्यक् फलं कदा दिशन्तीत्याकाङ्क्षायां कथयति—

आत्मसम्बन्धिनः (आत्मनः सहवासादिरूपः सम्बन्धो विद्यते येषु ते आत्मसम्बन्धिनः) ये ग्रहाः, ये च वा निजसधर्मिणः (स्वसमानधर्मविशिष्टाः) ग्रहास्तेषां (आत्मसम्बन्धिनां, निजसधर्मिणां च) अन्तर्दशास्वेव स्वदशाफलं दिशन्ति (प्रयच्छन्ति)। स्वकीयमहादशायां यदा यदाऽऽत्मसम्बन्धिग्रहाणामन्तर्दशासमयः समायाति तदा तदा विशिष्टं स्वदशाफलं दिशन्ति, यदा च निजसधर्मिणामन्तर्दशा समायाति तदा ततोऽपि किञ्चिन्न्यूनं, अन्यथा त्वतीवाऽल्पं स्वदशाफलं दिशन्तीत्यर्थः॥

भा०—सब (पाप तथा शुभ समस्त) ग्रह अपनी दशा में अपनी अन्तर्दशा आने पर ही अपने स्वभावनुरूप प्राणियों को शुभ वा अशुभ फल 'विशेषरूप से' नहीं देते हैं। जो ग्रह अपने सम्बन्धी, तथा जो अपने सधर्मी रहते हैं, उनकी अंतर्दशा में ही स्वभावानुसार अपनी-अपनी दशा का फल विशेषरूप से देते हैं॥ १-२॥

वि०—युक्तिवचनम्—

प्राप्ते सम्बंधिवर्गे वा सधर्मिणि समागते।
स्वाधिकारफलं केऽपि दर्शयन्ति दिशन्ति च॥
इति संदृश्यते लोके तथा ग्रहगणा अपि।
सम्बंध्यन्तर्दशास्वेव दिशन्ति स्वदशाफलम्॥

जिस प्रकार लोक में भी अपने घर में सम्बंधियों के आने पर तथा अपने समान धर्मियों के आने पर लोग अपने अधिकार के अच्छे पदार्थ उनको दिखलाते और खिलाते हैं, फिर सम्बंधियों के चले जाने पर सामान्य रूपसे रहते हैं, उसी प्रकार ग्रह भी अपनी दशा में अपने सम्बंधी और स्वधर्मी की अंतर्दशा आने पर विशेषरूप से अपने दशाफल देते हैं, यह उचित ही है॥ १-२॥

अथ सम्बन्धरहितानामन्येषामंतर्दशासु फलकल्पनामाह—

इतरेषां दशानाथविरुद्धफलदायिनाम्।

तत्तत्फलानुगुण्येन[1] फलान्यूह्यानि सूरिभिः॥ ३॥

सं०—इतरेषां (आत्मसम्बन्धिभिन्नानां) दशानाथविरुद्धफलदायिनां (दशानाथतो विरुद्धफलदातॄणां=सधर्मिभिन्नानां ग्रहाणामन्तर्दशासु) तत्तत्फलानुगुण्येन (तत्तत्फलानां=दशाऽन्तर्दशानाथफलानां आनुगुण्येन=गुणसादृश्येन) फलानि (दशाफलानि) सूरिभिः (पण्डितैः) ऊहनीयानि (विकल्पनीयानि)॥ ३॥

भा०—दशानाथ के सम्बन्ध रहित तथा विरुद्ध फल देनेवाले ग्रहों की अन्तर्दशा में दशाधिप और अन्तर्दशाधिप (दोनों) के अनुसार दशाफल कल्पना करके समझना चाहिये॥ ३॥

वि०—प्रत्येक ग्रहों की दशा में ६ प्रकार के ग्रहों की अन्तर्दशा हो सकती है। सम्बन्धी सधर्मी १, सम्बन्धी विरुद्धधर्मी २, सम्बन्धी अनुभयधर्मी ३, तथा असम्बन्धी सधर्मी ४, असम्बन्धी विरुद्धधर्मी ५, असम्बन्धी अनुभयधर्मी ६। इनमें जो ग्रह सम्बन्धी और सधर्मी भी हैं, उसका अन्तर्दशा में सर्वोत्कृष्ट, तथा जो सम्बन्धी अनुभयधर्मी हो उसमें कुछ न्यून, जो सम्बन्धी और विरुद्धधर्मी हो उसकी अन्तर्दशा में उससे भी कुछ न्यून, तथा असम्बन्धी सधर्मी की अन्तर्दशा में उसमें भी कुछ न्यून आत्मफल देते हैं। इनसे भिन्न जो असम्बन्धी विरुद्धधर्मी तथा असम्बन्धी अनुभयधर्मी हो उनके गुणानुसार फल का वितर्क करना चाहिये॥ ३॥

अथोक्तफलकल्पनामेवोदाहरति—

स्वदशायां त्रिकोणेशभुक्तौ केन्द्रपतिः शुभम्।
दिशेत्सोऽपि तथा नो चेदसम्बन्धेन पापकृत्॥ ४॥

सं०—पूर्वं त्रिकोणपतिसम्बन्धेन केन्द्रपतेः शुभत्वं, अन्यथा चाऽशुभत्वं प्रतिपादितं तत्फलान्येवोऽत्र समुदाहरति—केन्द्रपतिः त्रिकोणा-

---

१. "तत्तद्बलानुगुण्येन" इति पाठः साधीयान्। तत्तद्बलानुसारेणेत्यर्थः। (टीकाकारः)

धिपसम्बन्धी केन्द्राधिपः) स्वदशायां (निजमहादशायां) त्रिकोणेश-भुक्तौ (त्रिकोणेशस्यान्तर्दशायां शुभं (शुभदशाफलं) दिशेत् (दद्यात्) । सोऽपि (त्रिकोणेशोऽपि) तथा स्वदशायां (केन्द्रेशान्तर्दशायां) शुभं (दिशेत्) नो चेत् (यदि सम्बन्धो न स्यात्तदा) असम्बन्धेन (सम्बन्धाभावेन) पापकृत् (पापफलकारक एव केन्द्रपतिर्भवतीत्यर्थः) ॥ ४ ॥

भा०—केन्द्रपति अपनी दशा में 'स्वसम्बन्धी त्रिकोणेश की अन्तर्दशा आने पर शुभफल देता है। तथा त्रिकोणेश भी अपनी दशा में स्वसम्बन्धी केन्द्रश की अन्तर्दशा आने पर शुभफल देता है। अगर ऐसा न हो तो सम्बन्ध न होने के कारण केन्द्रेश अपनी दशा में त्रिकोणेश की अन्तर्दशा में भी सामान्यरूप से पापफल को ही देता है ॥ ४ ॥

वि०—उक्तं शुभत्वं सम्बन्धात् केन्द्रकोणेशयोः पुरा।
सम्बन्धेऽत्र शुभं तस्मादसम्बन्धेऽन्यथा फलम् ॥ स्पष्टार्थ ॥

उदाहरण—प्रथमाध्याय ८ श्लोक के उदाहरण में कुण्डली दखिये—दशमेश (मंगल) को नवमेश (शुक्र) से सम्बन्ध है। इसलिये मंगल की दशा में शुक्र की अन्तर्दशा आने पर शुभफल होगा। तथा सप्तमेश सूर्य को त्रिकोणेश (शुक्र या बुध) से सम्बन्ध नहीं है, इसलिये सूर्य की दशा में बुध शुक्र की अन्तर्दशा आने पर भी विशेष शुभफल नहीं होगा ॥ ४ ॥

अथ योगकारकग्रहस्य स्वदशायां मारकाणां, पापानां चाऽन्तर्दशायां कीदृशं फलं भवतीत्याह—

आरम्भो राजयोगस्य भवेन्मारकभुक्तिषु।
प्रथयन्ति तमारभ्य क्रमशः पापभुक्तयः ॥ ५ ॥
तत्सम्बन्धिशुभानां तु तथा पुनरसंयुजाम्।
शुभानां तु समत्वेन संयोगो योगकारिणाम् ॥ ६ ॥

सं०—मारकभुक्तिषु (मारकाणां योगकारकसम्बन्धिमारकेशानां भुक्तिषु = अन्तर्दशासु) 'यदि' राजयोगस्य आरम्भो भवेत् 'तदा' पापभुक्तयः (पापानां = योगकारकसम्बन्धिपापग्रहाणां भुक्तयः) (अन्तर्दशाः) तं (राजयोगं) आरभ्य क्रमशः प्रथयन्ति (क्रमेण विस्तारयन्ति) । तथा च तत्सम्बन्धिशुभानां (योगकारक-सम्बन्धिशुभग्रहाणां) पुनः असंयुजां (सम्बन्धरहितानां) शुभानां (शुभग्रहाणां) संयोगः (दशाऽन्तर्दशायोगस्तु) योगकारिणां समत्वेन (यादृशां योगकारकास्तत्सादृश्येन) 'फलप्रदो भवति'। अर्थात्—योगकारकसम्बन्धिनां पापिनां मारकाणामन्तर्दशा राजयोगमारभ्य क्रमशः पूरयन्ति। शुभानामन्तर्दशास्तु आरम्भसमये एव तं योगं पूरयन्तीति स्पष्टमायाति ॥ ५-६ ॥

भा०—योगकारक ग्रह की दशा में तत्सम्बन्धि मारकेश की अन्तर्दशा राजयोग का आरम्भ हो तो पापी मारक की अन्तर्दशा उस (राजयोग) को आरम्भ करके क्रम से बढ़ाता (विस्तार करता) है। तथा योगकारक के सम्बन्धी शुभग्रह अथवा असम्बन्धी शुभग्रह की अन्तर्दशा में योगकारक ग्रह के समान ही फल होता है। अर्थात् जिस प्रकार का योग रहता है, उस प्रकार का आरम्भ समय में ही पूर्ण रूप से हो जाता है ॥ ५-६ ॥

उदाहरण—यथा, पूर्वोक्त कुण्डली में नवमेश (शुक्र) दशमेश (मंगल) को अन्यतर स्थान सम्बन्ध होने के कारण सामान्य राजयोग प्राप्त है तथा मारकेश बृहस्पति एकादशेश होने के कारण पापी है और योगकारक शुक्र से सम्बन्ध है, अतः शुक्र ही दशा बृहस्पति की अन्तर्दशा आने पर राजयोग आरम्भ होकर पूर्ण योगफल क्रम से प्राप्त होगा।

तथा उसी योगकारक (शुक्र) की दशा में उसके सम्बन्धी शुभफलद (पञ्चमेश बुध) की अन्तर्दशा आने पर योगकारक के समान ही योगफल (अर्थात् सम्मान्य, राज्यलाभ) एक साथ ही हो जायगा ॥ ५-६ ॥

अथाऽपरं विशेषं दर्शयति—

शुभस्यास्य प्रसक्तस्य दशायां योगकारकाः।
स्वभुक्तिषु प्रयच्छन्ति कुत्रचिद्योगजं फलम् ॥ ७ ॥

सं०—प्रसक्तस्य (सम्बन्धिनः) अस्य शुभग्रहस्य दशायां (महादशायां) योगकारकाः 'ग्रहाः' स्वभुक्तिषु (स्वान्तर्दशासु) कुत्रचित् (कदाचित्) योगजं (योगसम्बन्धि) फलं प्रयच्छन्ति (दिशन्ति) ॥ ७ ॥

भा०—आत्मसम्बन्धि शुभग्रह की महादशा में योगकारक ग्रह अपनी अन्तर्दशा आने पर कदाचित् योगफल देते हैं ॥ ७ ॥

उदाहरण—पूर्वोक्त कुण्डली में आत्मसम्बन्धी शुभ (बुध) की महादशा में भी योगकारक (शुक्र)अपनी अन्तर्दशा में योगफल को दे सकते हैं ॥ ७ ॥

अथ राहु-केत्वोर्योगकारकत्वं कथयति—

तमोग्रहौ शुभारूढावसम्बन्धेन केनचित् ।
अन्तर्दशानुसारेण भवेतां योगकारकौ ॥ ८ ॥

सं०—शुभारूढौ (शुभस्थानगतौ = त्रिकोणस्थितौ) तमोग्रहौ [राहु-केतू] केनचित् [योगकारकेण सह] असम्बन्धेन [सम्बन्धं विनाऽपीत्यर्थः] अन्तर्दशानुसारेण [योगकारकदशायां स्वकीयान्तर्दशावशेन] योगकारकौ [योगफलप्रदौ] भवेताम् ॥ ८ ॥

भा०—त्रिकोण [९।५] में स्थित राहु केतु के योगकारक किसी ग्रह से सम्बन्ध न होने पर भी-योगकारक की दशा में अपनी अन्तर्दशा आने पर, दोनों योगकारक [योगफलप्रद] होते हैं ॥ ८ ॥

उदाहरण— जैसे पूर्वोक्त कुण्डली में ५ स्थान स्थित राहु का योगकारक शुक्र और मंगल से संबन्ध नहीं है तो भी मङ्गल और शुक्र की दशा में राहु अपनी अन्तर्दशा आने पर योगफलदायक होगा ॥ ८ ॥

कृता दशाविचारेऽस्मिन् श्रीसीतारामशर्मणा ।
उडुदायप्रदीपस्य टीकेयं पूर्णतामिता ॥

इति लघुपाराशरीटीकायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

———

अथ मिश्रकाध्यायः ॥ ५ ॥

तत्र— "तत्तत्फलानुगुण्येन फलान्यूह्यानि सूरिभिरि" ति पूर्वं यत् प्रतिपादितं तदेवोदाहरणरूपेण दर्शयति—

पापा यदि दशानाथाः शुभानां तदसंयुजाम् ।
भुक्तयः पापफलदास्तत्संयुक्शुभभुक्तयः ॥ १ ॥
भवन्ति मिश्रफलदा भुक्तयो योगकारिणाम् ।
अत्यन्तपापफलदा भवन्ति तदसंयुजाम् ॥ २ ॥

सं०—यदि पापाः [पापफलप्रदाः] दशानाथाः [महादशाधिपास्तदा] तदसंयुजां [तदसम्बन्धिनां] शुभानां [शुभप्रदानां] भुक्तयः [अन्तर्दशाः] पापफलदा 'भवन्ति'। तत्संयुक्शुभभुक्तयः [तत्संयुजां पापदशाधिपसम्बन्धिनां शुभानां भुक्तयः = अन्तर्दशाः] मिश्रफलदाः [मिश्रं = शुभाऽशुभं फलं ददातीति मिश्रफलदाः] भवन्ति। 'तथा' तदसंयुजां [तत्सम्बन्धरहितानां] योगकारिणां भुक्तयः [अन्तर्दशाः] अत्यन्तपापफलदा भवन्ति ॥ १-२ ॥

भा०—यदि महादशा के स्वामी पापफलप्रद ग्रह हों तो उनके असम्बन्धी शुभग्रह की अन्तर्दशा पापफल को ही देती है तथा उन (पापी महादशाधिप) के सम्बन्धी शुभग्रह को अन्तर्दशा मिश्र (शुभ-अशुभ दोनों) फल देती है। और पापी दशाधिप के असम्बन्धी योगकारक ग्रहों की अन्तर्दशा अत्यन्त पापफल देनेवाली होती है ॥ १-२ ॥

अथ मारकदशाफलविशेषं कथयति—

सत्यपि स्वेन सम्बन्धे न हन्ति शुभभुक्तिषु ।
हन्ति सत्यप्यसम्बन्धे मारकः पापभुक्तिषु ॥ ३ ॥

सं०— 'स्वदशायां' मारको 'ग्रहः' स्वेन (आत्मना) सम्बन्धे सत्यपि शुभभुक्तिषु (शुभान्तर्दशासु) 'जनं' न हन्ति (न मारयति) । असम्बन्धे (सम्बन्धाभावे) पापभुक्तिषु (पापान्तर्दशासु) हन्ति । सम्बन्धे सति पापान्तर्दशास्ववश्यमेव हन्तुमर्हतीत्यर्थादेव सिद्ध्यति ॥

भा०—अपनी महादशा में मारक ग्रह आत्मसम्बन्ध होने पर भी शुभग्रह की अन्तर्दशा में नहीं मारता है। (बिना सम्बन्ध से शुभग्रह की अन्तदशा में मारना तो स्वयं सिद्ध ही है।) तथा बिना सम्बन्ध के भी पापग्रहों की अन्तर्दशा में मारता है। (सम्बन्धी पापी अन्तर्दशा में मारना तो स्वयंसिद्ध ही है ॥ ३ ॥

अथ शनि-शुक्रयोः परस्परान्तर्दशासु फलविशेषं कथयति—

परस्परदशायां स्वभुक्तौ सूर्यज-भार्गवौ ।
व्यत्ययेन विशेषेण प्रदिशेतां शुभाऽशुभम् ॥ ४ ॥

सं०—सूर्यज-भार्गवौ (शनि-शुक्रौ) परस्परदशायां (शुक्रदशायां शनिः, शनिदशायां शुक्रः) स्वभुक्तौ (स्वान्तर्दशायां) व्यत्ययेन (शनिः शुक्रफल, शुक्रः शनिफलं इत्येव व्यत्ययः तेन) विशेषेण शुभाऽशुभं फलं प्रदिशेताम् [प्रयच्छेताम्] ॥ ४ ॥

भा०—शनि तथा शुक्र परस्पर दशा में अपनी-अपनी अन्तर्दशा आने पर व्यत्यय से शुभाशुभ फल को विशेषरूप से देते हैं। अर्थात् शुक्र की महादशा में शनि अपनी अन्तर्दशा में शुक्र सम्बन्धी फल को, और शनि की महादशा में शुक्र अपनी अंतर्दशा आने पर शनि के ही फल को विशेषरूप से देता है ॥ ४ ॥

अथ—"निवसेतां व्यत्ययेने" त्यादिना त्रिकोणकेन्द्राधिपयोःसम्बन्धात् योगकारकत्वं यत् प्रतिपादितं— तत्र लग्नेशस्योभयधर्मित्व-ज्ञापनार्थं श्लोकद्वयेन योगचतुष्टयमुदाहरति—

कर्मलग्नाधिनेतारावन्योऽन्याश्रयसंस्थितौ ।
राजयोगाविति प्रोक्तं विख्यातो विजयी भवेत् ॥ ५ ॥
धर्मलग्नाधिनेतारावन्याऽन्याश्रयसंस्थितौ ।
राजयोगाविति प्रोक्तं विख्यातो विजयी भवेत् ॥ ६ ॥

सं०—कर्मलग्नाधिनेतारौ (दशमेश-लग्नेशौ) अन्योन्याश्रयसंस्थितौ (लग्नेशो दशमे, दशमेशो लग्ने इत्येको योगः, अथवा उभौ मिलित्वैक-

त्रैव 'लग्ने दशमे वा' स्थितौ इति द्वितीयो योगः, एवमिमौ) राजयोगो, इति मुनिभिः प्रोक्तम् (कथितम्) । अत्र जातो विख्यातः (जगत्प्रसिद्धः) विजयी (जयशीलश्च) भवेत् ॥

तथा धर्मलग्नाधिनेतारौ (नवमेश-लग्नेशौ) अन्योन्याश्रयसंस्थितौ (नवमेशो लग्ने,लग्नेशो नवमेऽथवा–उभौ मिलित्वा लग्ने वा नवमे स्थितौ तदा) इमौ राजयोगौ, भवेताम् । अत्र जातो जनो विख्यातो विजयी च भवेदिति प्रोक्तं (मुनिभिः कथितम्) । अत्र दशमेशन (केन्द्रेशेन सह लग्नेशस्य त्रिकोणेशत्वेन तथा नवमेशेन (त्रिकोणेशेन) सह लग्नेशस्यैव केन्द्रेशत्वेन, सम्बन्धाद्योगकारकमुदाहृत्य लग्नेस्योभयधर्मित्वं स्फुटं प्रदर्शितमाचार्येणेत्यलं पल्लवितेन पुरस्तात् पण्डितानाम् ॥ ५-६ ॥

भा०—लग्नेश और दशमेश यदि परस्पर स्थान में हों, अथवा दोनों मिलकर एक ही स्थान (लग्न या दशम) में हो तो दोनों तरह से राजयोग होता है, इसमें उत्पन्न होनेवाला जगत्प्रसिद्ध और विजयी होता है, ऐसा मुनियों ने कहा है।

तथा लग्नेश और नवमेश यदि परस्पर स्थानमें हों अथवा दोनों मिलकर एक ही स्थान (लग्न वा नवम) में हो तो दोनों ही राजयोग होते हैं, ऐसा मुनियों ने कहा है। इसमें उत्पन्न होनेवाला विख्यात और विजयी होता है ॥ ५-६ ॥

वि०—यह लग्नेश को दशमेश और नवमेश के साथ सम्बन्ध के कारण राजयोग कह कर लग्नेश में केन्द्रेशत्व और त्रिकोणेशत्व दोनों धर्म बतलाये गये हैं। तथा प्रबल केन्द्रेश और त्रिकोणेश के साथ सम्बन्ध से विख्यात और बिजयी होना उत्कृष्ट फल कहा गया है। इससे सिद्ध होता है कि लग्नेश और त्रिकोणेश के सम्बन्ध से भी सामान्य राजयोग होता है।

युक्तिवचन—

भाग्येशो राज्यनाथश्च देहाधीशेन संयुतौ ।
तौ चेद् वर्धयतो भाग्यं, राज्यं चेति किमद्भुतम् ॥

जन्मकालिक लग्न ही शरीर है, उसी के हिताहित साधक धन आदि भाव हैं। अतः किसी भावेश को जब तक देहाधीश (लग्नेश) से साक्षात् सम्बन्ध न हो तब तक अपने फल को पूर्णरूप से नहीं दे सकता। अतः लग्नेश को भाग्येश से और राज्येश से सम्बन्ध होने पर यदि भाग्य और राज्य का लाभ होने से विख्यात और विजयी कहा गया तो क्या आश्चर्य ? अर्थात् उचित कहा गया है।

उपर्युक्त उदाहरण से यह सूचित कराया गया है कि लग्नेश का जिन भावेशों से जिस प्रकार सम्बन्ध रहता है उसी प्रकार उन भावों का फल होता है ॥ ५-६ ॥

मिश्राध्याये कृता स्फीता श्रीसीतारामशर्मणा।
उडुदायप्रदीपस्य टीकेयं पूर्णतामिता ॥

इति लघुपाराशरीटीकायां मिश्रकाध्यायः ॥ ५ ॥

—:꠸:—

शाके तर्कशराहिभूपरिमिते मार्गेऽधिवाराणसि
स्थित्वा श्रीमिथिलेशधर्मभवने ध्यात्वाऽन्नपूर्णापदम्।
सम्यग् दर्शयता स्फुटां शिशुमुदे युक्तिं तथोदाहृतिं
व्याख्याता नृगिरा तथा सुरगिरा पाराशरीयं मया ॥
ज्योतिर्वित्पदवीं याति यामधीत्याल्पधीरपि।
व्याख्या नाम्ना प्रविख्याता सा तत्त्वार्थप्रकाशिका ॥

—०—

श्रीः

अथ उडुदशामार्गापरसंज्ञ-
मध्य-पाराशरी-होरा
प्रथमाध्यायः

टीकाकारकृतमङ्गलम्—

मतिसारदयायुक्तां श्रियं शारदयाऽन्विताम्।
प्रणम्योडुदशामार्गे टीकां सोदाहृतिं ब्रुवे ॥

ग्रन्थकारकृतमङ्गलम्—

पाराशरं मुनिं नत्वा तस्य होरां निरीक्ष्य च।
वक्ष्ये ह्युडुदशामार्गे सारं शास्त्रानुसारतः ॥ १ ॥

पराशर मुनि को प्रणाम करके उनकी होरा को देखकर नक्षत्रदशा के तत्त्वों को मैं कहता हूँ ॥ १ ॥

आदित्यप्रमुखाः खेटास्तथा मेषादिराशयः।
लोकानामुपकाराणि सदा कुर्वन्तु खे स्थिताः ॥ २ ॥

आकाशस्थित सूर्यादि नवग्रह और मेषादि राशियाँ सर्वदा लोगों का कल्याण करें ॥ २ ॥

धन और सुख का स्थान—

प्रथमं नवमं चैव धनमित्युच्यते बुधैः।
चतुर्थं दशमं स्थानं सुखं प्रोक्तं मनीषिभिः ॥ ३ ॥

लग्न से प्रथम और नवम भाव भी धन संज्ञक, तथा चतुर्थ और दशम दोनों सुख संज्ञक हैं ॥ ३ ॥

अष्टमं ह्यायुषः स्थानमष्टमादष्टमं च यत् ।
तयोरपि व्ययस्थानं मारकस्थानमुच्यते ॥ ४ ॥

इसका अर्थ 'लघुपाराशरी' में देखिये ॥ ४ ॥

मारकग्रहनिरूपण—

चन्द्र-भानू विना सर्वे मारका मारकाधिपाः ।
षष्ठाऽष्टमव्ययेशास्तु राहु-केतू तथैव च ॥ ५ ॥

सूर्य चन्द्रमा को छोड़कर मारक स्थान के स्वामी होने से सब ग्रह मारक होते हैं। तथा ६, ८, १२ स्थानों के स्वामी और राहु, केतु भी (मारक स्थान में पड़ने से) मारक होते हैं ॥ ५ ॥

विपत्तारा-प्रत्यरीशौ वधभेशस्तथैव च ।
मारका जातके प्रोक्ताः कालविद्भिर्मनीषिभिः ॥६॥

विपत् और प्रत्यरि तारा (जन्म नक्षत्र से ३, ५) के स्वामी तथा वध (७ वीं) तारा के स्वामी भी जातकशास्त्र में मारक कहे गये हैं ॥६॥

उदाहरण—यदि मृगशिरा जन्मनक्षत्र है तो उससे ३ री पुनर्वसु = विपत्, ५ वीं आश्लेषा = प्रत्यरि, और ७ वीं पूर्वफाल्गुनी = वध तारा हुई। अबकहडाचक्रानुसार इन नक्षत्रों के स्वामी मारक हुए। तीनों आवृत्ति की ताराओं से इस प्रकार विचार करना चाहिये ॥ ६ ॥

खरद्रेष्काणपति और वैनाशिकाधिपति—

आद्यन्तपौ च वित्तेयौ चन्द्राक्रान्ताद् ग्रहौ नृणाम् ।
खरद्रेष्काणपश्चैव क्रमाद् वैनाशिकाधिपः ॥७॥

जिस राशि में जन्मसमय चन्द्रमा हो उस राशि से पूर्व और अग्रिम राशियों के स्वामी, तथा जन्मलग्न गत द्रेष्काण से खर—२२ वाँ द्रेष्काण का स्वामी और जन्मनक्षत्र से २३ वाँ नक्षत्र का स्वामी, ये चारों भी मारक होते हैं ॥ ७ ॥

इति संज्ञाध्यायः प्रथमः

अथ राजयोगाध्यायो द्वितीयः

अथाऽपरं प्रवक्ष्यामि राजयोगादिसम्भवम् ।
ग्रहाणां स्थानभेदेन राशि-दृष्टिवशात् फलम् ॥ १ ॥

अब ग्रहों के स्थान-भेद तथा दृष्टिवश से राजयोगादि फलों को कहता हूँ ॥ १ ॥

जन्मकालं स्फुटं ज्ञात्वा लग्नं निश्चित्य पण्डितैः ।
तस्मिन् काले ग्रहाणां च चारं निश्चित्य योजयेत् ॥ २ ॥

पहिले स्पष्ट जन्मकाल समझ कर उस समय स्पष्ट लग्न और ग्रह की स्पष्टगति द्वारा स्पष्ट राश्यादि का ज्ञान करना चाहिये ॥ २ ॥

पूर्वमायुः परीक्ष्येत पश्चाल्लक्षणमेव च ।
अन्यथा लक्षणज्ञाने ह्यायाशो व्यर्थतामियात् ॥ ३ ॥
पुनस्तन्वादयो भावाः स्थाप्यास्तेषां शुभाऽशुभम् ।

प्रथम आयुर्दाय का निश्चय करके अन्य लक्षणों को देखना चाहिये। क्योंकि बिना आयुर्दाय के अन्य लक्षणों का प्रयत्न व्यर्थ हो जाता है। उसके बाद द्वादश भाव (स्पष्ट) करके उनका शुभाशुभ विचार करे ॥३॥

अशुभभाव—

लाभस्तृतीयो रन्ध्रश्च षष्ठभावो व्ययस्तथा ॥ ४ ॥
एषां योगेन यो भावस्तस्य नाशो भवेद् ध्रुवम् ।

११, ३, ८, ६, १२, ये अशुभभाव हैं। इनके योग से जो भाव बने उस भाव का निश्चय नाश होता है ॥ ४½ ॥

इसका तात्पर्यार्थ यह है कि स्पष्ट द्वादश भावों का साधन करके उनमें ११, ३, ८, ६, १२ इन भावों का योग करे, राशिस्थान में १२ से अधिक हो तो १२ से तष्टित करके शेष ग्रहण करे, इस प्रकार वह योग भाव जन्म कुण्डली में मेषादि क्रम से जिस भाव में पड़े उस भाव की हानि होती है।

जन्मकुण्डली

१२ | १०सू | शु बुबृ ११ | १ | ९ के | २मं | ८श | राहु ३ | ५ | ७ | ४ | ६
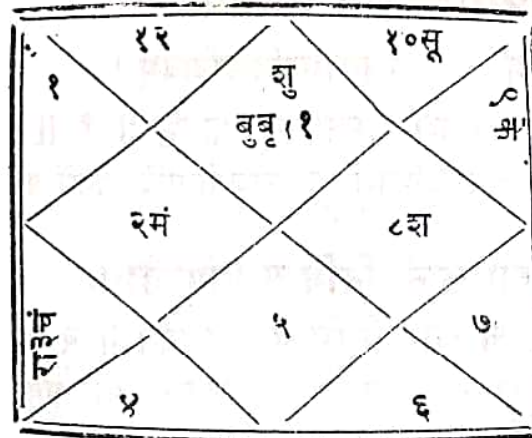
जैसे, ३, ६, ८, ११ और १२ इन राश्यादि भावों के योग से राश्यादि ३।१२।६।१४ बचा तो यह जन्म लग्न कुण्डली में षष्ठभाव में पड़ा इसलिये षष्ठभाव का नाश [हानि] समझना। षष्ठभाव से शत्रु रोग, इत्यादि का विचार होता है इसलिये शत्रु आदि का नाश होगा ऐसा कहना ॥ ४९ ॥

शुभभाव—

चत्वारो राशयो भद्राः केन्द्राः कोणाः शुभावहाः ॥ ५ ॥
तेषां योगेन यो भावः सोऽशुभोऽपि शुभो भवेत् ।

चार केन्द्र राशियाँ लग्न से (१,४,७,१०) भद्र संज्ञक हैं और त्रिकोण (लग्न से १, ५, ९) शुभ संज्ञक हैं। इन भावों के योग से जो भाव बने वह अशुभ भाव भी हो तो शुभप्रद हो जाता है ॥५½॥

उदाहरण - उपर्युक्त विधि से केन्द्रस्थ चारों भाव के योग करके जो राश्यादि हो वह जिस भाव में पडे वह शुभ हो जाता है। एवं त्रिकोणस्थ भावों के योग से जो राश्यादि हो वह जिस भाव में पड़े वह शुभ होता है॥ ५—५½ ॥

केन्द्रस्थराशियों की विशेषता—

केन्द्राः ख्यातास्तु चत्वारो मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ ६॥
तेषां मध्ये शुभौ प्रोक्तौ कर्मबन्धू विशेषतः ।

लग्न से ४ भावों की केन्द्र संज्ञा कही गई है उनमें ४ और १० विशेष कर शुभप्रद हैं ॥ ६½-७ ॥

त्रिकोण की विशेषता

त्रिकोणस्थाऽपि विख्यातास्त्रयो ज्योतिषवेदिभिः ॥ ७ ॥
पञ्चमो नवमस्तत्र विशेषेण शुभप्रदौ ।

त्रिकोण भी तीन कहे गये हैं, उनमें ५,९, भाव विशेष शुभ हैं ॥७½-८॥

ग्रहों की दृष्टि स्थान—

पश्यन्ति सप्तमं सर्वे शनि-जीव-कुजाः पुनः ॥ ८ ॥
विशेषतश्च त्रिदश-त्रिकोण-चतुरष्टमान् ।

इसका अर्थ लघुपाराशरी में देखिये ॥ ८ ॥

अथ राजयोग—

अथाऽपरं प्रवक्ष्यामि राजयोगमनेकधा ॥ ९ ॥
लक्ष्मीस्थानं त्रिकोणाख्यं विष्णुस्थानन्तु केन्द्रकम् ।
तयोः सम्बन्धमात्रेण चक्रवर्ती नरो भवेत् ॥१०॥

त्रिकोण लक्ष्मी के स्थान और केन्द्र विष्णु के स्थान हैं। इसलिये इन दोनों (अर्थात् इन दोनों के अधिपों) के सम्बन्ध होने से जातक चक्रवर्ती होता है ॥ ९-१० ॥

तपःस्थानाधिपो मन्त्रे मन्त्रनाथोऽथ वा गुरौ ।
उभावन्योन्यदृष्टौ चेज्जातः स्याद् बहुराज्यभाक् ॥११॥

नवमेश पञ्चम भाव में अथवा पञ्चमेश नवम में हो, दोनों में परस्पर दृष्टि हो तो जातक बड़ा राज्य का भागी होता है ॥ ११ ॥

यत्र कुत्रापि संयुक्तौ तौ मिथः समसप्तमौ ।
राजवंशोद्भवो बालो राजा भवति भूतले ॥१२॥

किसी भी भाव में यदि पञ्चमेश और नवमेश परस्पर सप्तम भाव में पड़े (अर्थात् परस्पर पूर्ण दृष्टि से देखते हों) तो राजा का पुत्र राजा होता है ॥ १२ ॥

वाहनेशे तथा माने मानेशे वाहनस्थिते ।
मन्त्रधर्माधिपाभ्यां चेद् दृष्टे जातो भवेन्नृपः ॥१३॥

चतुर्थेश दशम में और दशमेश चतुर्थ में हो तथा पञ्चमेश या नवमेश से दृष्ट हो तो जातक राजा होता है ॥ १३ ॥

मन्त्रेश-कर्मेश-सुखेश-लग्न-नाथाश्च धर्मेश्वरसंयुताश्चेत् ।
नृपोद्भवो वारणवाजिवाहैः स्वतेजसा व्याप्तदिगन्तरालः ॥१४॥

पञ्चमेश, दशमेश, चतुर्थेश, लग्नेश ये किसी भी भाव में नवमेश साथ हों तो राजपुत्र बहुत हाथी घोड़े से युक्त होकर अपने प्रताप से पृथ्वी को व्याप्त करता है ॥ १४ ॥

सुखकर्माधिपौ द्वौ चेत् मन्त्रनाथेन संयुतौ ।
धर्मनाथेन संदृष्टौ जातश्चेद् बहुराज्यभाक् ॥ १५ ॥

चतुर्थेश, दशमेश और पञ्चमेश एक स्थान में नवमेश से दृष्ट हो तो किसी भी कुल में उत्पन्न बालक राजा होता है ॥ १५ ॥

सुतेश्वरो धर्मपसंयुतश्चे-
ल्लग्नेश्वरेणापि युतो विलग्ने ।
सुखेऽथवा मानगृहेऽपि वा स्याद्
राज्याभिषिक्तो यदि राज्यवंशः ॥१६॥

पञ्चमेश, नवमेश और लग्नेश के साथ लग्न या चतुर्थ अथवा दशम भाव में हों तो राजवंशोद्भव बालक राजा होता है ॥ १६ ॥

इति राजयोगाध्यायः ॥ २ ॥

— :०:—

अथ योगाध्यायः ॥ ३ ॥

अथाऽपरं प्रवक्ष्यामि धनयोगं विशेषतः ।
ग्रहाणां स्थानभेदेन राशिदृष्टिवशेन च ॥ १ ॥

अब ग्रहों के स्थान और दृष्टिभेद से धनयोग कहते हैं ॥ १ ॥

ये ये ग्रहा धर्मपबुद्धिपाभ्यां दृष्टाश्च युक्ताश्च सुखप्रदास्ते ।
रन्ध्रेश्वरारिव्ययपैर्युताश्चेत् शोकप्रदा मारकनायकैश्च ॥

स्वाभाविक शुभ या पाप कोई भी ग्रह यदि पञ्चमेश और नवमेश से दृष्ट्युत हो तो सुखप्रद, तथा अष्टमेश, षष्ठेश, द्वादशेश और मारकेश से युतदृष्ट हो तो शोकप्रद होता है ।' २ ॥

क्रूरसौम्यतया चैव सुदुःस्थानवशात्तथा ।
साहचर्याच्च खेटानां धनयोगान् प्रकल्पयेत् ॥ ३ ॥

ग्रहों की क्रूरता, सौम्यता और स्थान का शुभत्व, अशुभत्व या साहचर्य को विचारकर 'धनयोग' में न्यूनाधिक की कल्पना करनी चाहिये ॥

अधिक धनयोग

धर्मस्थाने गुरुक्षेत्रे गुरु-शुक्रयुते तथा ।
पञ्चमाधिपयुक्ते वा बहुद्रव्यस्य नायकः ॥ ४ ॥

नवम भाव में धनु या मीन गुरु, शुक्र अथवा पञ्चमेश से युक्त हो तो वह जातक बहुत धनों का मालिक होता है ॥ ४ ॥

बुधर्क्षे पञ्चमे भावे बुधयुक्ते तथैव च ।
लाभे कुजः शशी यस्य स जातो बहुद्रव्यभाक् ॥ ५ ॥

पञ्चम भाव में बुध से युक्त मिथुन वा कन्या राशि हो तथा एकादश भाव में मङ्गल और चन्द्रमा हो तो जातक बहुत धनों का स्वामी होता है ॥ ५ ॥

शुक्रर्क्षे पञ्चमे भावे तत्र शुक्रे स-सोमजे ।
लाभे शनैश्चरे जातो बहुद्रव्यस्य नायकः ॥ ६ ॥

पञ्चमभाव में शुक्र की राशि (वृष, तुला) यदि शुक्र और बुध से युक्त हो और एकादश भाव में शनि हो तो बहुत धनों का मालिक होता है ॥६॥

सूर्यर्क्षे पञ्चमे भावे स्तौ सूर्ययुते तथा ।
लाभे देवगुरौ चैव बहुद्रव्यस्य नायकः ॥ ७ ॥

पञ्चम भाव में सूर्य सहित सिंह राशि हो, एकादश भाव में गुरु हों तो जातक बहुत धनों का स्वामी होता है ॥ ७ ॥

पञ्चमे च शनिक्षेत्रे तस्मिन् सूर्ययुतान्विते ।
लाभे चन्द्रे तथा सूर्ये बहुद्रव्यस्य नायकः ॥ ८ ॥

पञ्चम भाव में मकर या कुम्भ शनि से युक्त हो, एकादश भाव (कर्क) में चन्द्रमा अथवा सिंह में सूर्य हो तो जातक बहुत धनवान् होता है ॥ ८ ॥

पञ्चमे तु गुरुक्षेत्रे गुरुणा संयुते तथा ।
लाभे चन्द्रे स-सौम्ये च बहुद्रव्यस्य नायकः ॥ ९ ॥

पञ्चम भाव में धनु या मीन गुरु से युक्त हो, एकादश में चन्द्रमा और बुध हो तो जातक धनवान् होता है ॥ ९ ॥

पञ्चमे तु शशिक्षेत्रे तस्मिन् चन्द्रेण संयुते ।
लाभे शुक्रेण संयुक्ते बहुद्रव्यस्य नायकः ॥ १० ॥

पञ्चमभाव में चन्द्रमा से युक्त कर्क राशि हो तथा एकादश में शुक्र हो तो जातक बहुत धनों का मालिक होता है ॥ १० ॥

लग्न से धनयोग—

भानुक्षेत्रे गते लग्ने तस्मिन् सूर्येण संयुते ।
भौमेन गुरुणा दृष्टे युक्तः स्यादयुतैर्धनैः ॥ ११ ॥

सिंह लग्न में सूर्य हो और कुज गुरु से युत या दृष्ट हो तो जातक १०००० दश हजार मुद्रा से युक्त होता है ॥ ११

चन्द्रक्षेत्रे गते लग्ने तस्मिन् चन्द्रेण संयुते ।
जीवाराभ्यां युते दृष्टे जाता धनयशोऽर्चितः ॥ १२ ॥

कर्क लग्न में चन्द्रमा यदि गुरु मंगल से युक्त दृष्ट हो तो जातक धन यश से विख्यात होता है ॥ १२ ॥

भौमक्षेत्रे गते लग्ने तस्मिन् भौमेन संयुते ।
गुरुचन्द्रयुते दृष्टे जातो धनयशोऽर्चितः ॥ १३ ॥

मेष या वृश्चिक लग्न में मंगल गुरु चन्द्र से युक्त हो तो जातक बहुत धनी और यशस्वी होता है ॥ १३ ॥

बुधक्षेत्रे गते लग्ने तस्मिन् बुधयुते तथा ।
जीवेन्दुभ्यां युते दृष्टे जातो धनयशोऽर्चितः ॥१४॥

मिथुन या कन्या लग्न में बुध यदि गुरु चन्द्र से युक्त दृष्ट हो तो जातक धनी और यशस्वी होता है ॥ १४ ॥

गुरुक्षेत्रे गते लग्ने तस्मिन् गुरुयुते सति ।
बुध-शुक्र-युते दृष्टे जातो धनयशोऽर्चितः ॥१५॥

यदि गुरु से युक्त धनु या मीन लग्न हो तथा बुध शुक्र से भी युक्त दृष्ट हो तो जातक बहुत धनी और यशस्वी होता है ॥ १५ ॥

शुक्रक्षेत्रे गते लग्ने तस्मिन् शुक्रेण संयुते ।
शनिसौम्ययुते दृष्टे जातो धनयशोऽर्चितः ॥१६॥

वृष या तुला लग्न में शुक्र यदि शनि बुध से युक्त दृष्ट हो तो जातक धनी और यशस्वी होता है ॥ १६ ॥

शनिक्षेत्रे गते लग्ने तस्मिन् शनियुते तथा ।
बुधशुक्रयुते दृष्टे जातो धनयशोऽर्चितः ॥१७॥

मकर या कुम्भ लग्न में शनि यदि बुध शुक्र से युत दृष्ट हो तो जातक धनी और यशस्वी होता है ॥ १७ ॥

इति धनयोगाध्यायः ॥ ३ ॥

अथ दारिद्रययोगाध्यायः ॥ ४ ॥

अथाऽपरं प्रवक्ष्यामि दारिद्रयं दुःखकारणम् ।
क्रूरखेटादियोगैश्च दारिद्रयं सम्भवेन्नृणाम् ॥१॥

अब दुःखप्रद दारिद्रय योग कहते हैं। पापग्रहों के योग से लोगों को दारिद्रय होता है ॥ १ ॥

ये ये ग्रहा धर्मपबुद्धिपाभ्यां युक्ता न दृष्टा बहुदुःखदास्ते ।
रन्ध्रेश्वरारिव्ययपैर्युता ये व्ययप्रदा मारकनायकेन ॥२॥

जो ग्रह अष्टमेश, षष्ठेश, द्वादशेश और मारकेश से युक्त हो और नवमेश या पञ्चमेश से युक्त दृष्ट न हो तो वह ग्रह कष्टदायक होता है ॥

लग्नेशे रिष्फभावस्थे रिष्फेशे लग्नमागते ।
मारकेशयुते दृष्टे जातस्य निधनं वदेत् ॥ ३ ॥

लग्नेश व्ययभाव में, व्ययश लग्न में हो और मारकेश से युक्त या दृष्ट हो तो जातक का मरण कहना ।। ३ ॥

लग्नेश्वरे षष्ठगृहे गते वा षष्ठेश्वरे लग्नगतेऽथवाऽऽस्ते ।
विलग्नपे मारकनाथदृष्टे युक्ते भवेन्निर्धनको मनुष्यः ॥ ४ ॥

लग्नेश षष्ठ में, षष्ठेश लग्न में, वा लग्नेश षष्ठ में मारकेश से युक्त दृष्ट हो तो वह मनुष्य निर्धन होता है ॥ ४ ॥

लग्नेऽब्जे केतुसंयुक्ते लग्नेशे निधनं गते ।
मारकेशयुते दृष्टे नृपबालोऽपि निर्धनः ॥ ५ ॥

लग्न में चन्द्रमा केतु से युक्त हो और लग्नेश अष्टम भाव में यदि मारकेश से युत दृष्ट हो तो राजा का लड़का भी निर्धन होता है ॥ ५ ॥

षष्ठेऽष्टमे व्यये वाऽपि लग्नेशे पापसंयुते ।
मारकेशयुते दृष्टे राजवंशेऽपि निर्धनः ॥ ६ ॥

पापग्रह और मारकेश के साथ यदि लग्नेश (६, ८, १२) इनमें किसी भाव में हो तो राजवंशोद्भव भी निर्धन होता है ॥ ६ ॥

विलग्ननाथे रविणा च रिष्फनाथेन युक्ते यदि वाऽपि दृष्टे ।
मित्रात्मजेनापि युते च दृष्टे शुभैर्न दृष्टे स भवेद्दरिद्रः ॥ ७ ॥

लग्नेश यदि रवि, द्वादशेश या शनि से युत दृष्ट हो, उस पर शुभग्रह की युति या दृष्टि नहीं हो तो जातक दरिद्र होता है ॥ ७ ॥

मन्त्रेशो धर्मनाथश्च षष्ठेऽन्त्ये च स्थितौ क्रमात् ।
दृष्टौ चेन्मारकेशेन जातः स्यान्निर्धनो नरः ॥ ८ ॥

पञ्चमेश षष्ठभाव में और नवमेश द्वादश भाव में हो तथा मारकेश से युत दृष्ट हो तो जातक निर्धन होता है ॥ ८ ॥

यद्भावेशे रिष्फरन्ध्रारिसंस्थे यद्भावस्था रिष्फरन्ध्रारिनाथाः ।
पापैर्दृष्टा वा युतास्तस्य नाशं दुःखाक्रान्तो निर्धनश्चञ्चलः स्यात् ॥

जिस भाव का स्वामी ६, ८, १२ भाव में पडे अथवा द्वादशेश, अष्टमेश, षष्ठेश ये जिस भाव में पड़े तथा पाप से युत दृष्ट हों तो उस भाव का नाश होता है, तथा जातक निर्धन और चञ्चल होता है ॥९॥

चन्द्राक्रान्तनवांशेशो मारकेशयुतो यदि ।
मारकस्थानगो वाऽपि जातको निर्धनो भवेत् ॥ १० ॥

चन्द्र नवांशेश यदि मारकेश युत हो अथवा मारक स्थान में हो तो जातक निर्धन होता है ॥ १० ॥

पापग्रहे लग्नयाते भाग्यकर्माधिपौ विना ।
मारकेशयुतौ दृष्टे जातको निर्धनो भवेत् ॥११॥

नवमेश, दशमेश को छोड़कर अन्य पापग्रह यदि मारकेश से युत दृष्ट हो तो जातक निर्धन होता है ॥ ११ ॥

विलग्नेशनवांशेशौ रिष्फषष्ठाष्टगौ यदि ।
मारकेशयुतौ दृष्टौ जातको निर्धनो भवेत् ॥ १२ ॥

लग्नेश या लग्ननवांशेश यदि ६, ८, १२ भाव में हों और मारकेश से युत दृष्ट हो तो जातक धन-हीन होता है ॥ १२ ॥

धने स्थितौ च भौमेन्दू कथितौ धननाशकौ ।
बुधेक्षितो महद्वित्तं कुरुते तद्गतः शनिः ॥ १३ ॥

मंगल और चन्द्रमा दोनों धन भाव में हों तो धननाशक होते हैं। यदि धनभाव में शनि बुध से दृष्ट हो तो बहुत धनप्रद होता है ॥१३॥

निःस्वतां कुरुते तत्र रविर्नित्यं शनीक्षितः ।
बहुद्रव्ययुतं ख्यातं शन्यदृष्टः करोत्यसौ ॥ १४ ॥

द्वितीय भाव में रवि यदि शनि से दृष्ट हो तो धनहीन होता है। यदि शनि से दृष्ट नहीं हो तो जातक को बहुत धनों से युक्त बनाता है ॥ १४ ॥

विशेष योग—

धनभावगताः सौम्याः कुर्वन्त्येव धनं बहु ।
बुधयुक्तो गुरुस्त्वत्र निर्धनं कुरुते नरम् ॥ १५ ॥
बुधश्चन्द्रान्वितस्त्वत्र तद्धनं हन्ति निश्चितम् ।
बलाऽबलविवेकेन चिन्त्यमेतन्मनीषिभिः ॥ १६ ॥

धन (नवम) भाव में शुभग्रह हो तो बहुत धनदायक होते हैं। यदि त्वत्र (२४ द्वादश) भाव में बुध से युक्त गुरु हो तो मनुष्य निर्धन होता है। यदि द्वादशभाव में बुध से युक्त चन्द्रमा हो तो धन हानिकारक होते है। इस प्रकार सुयोग और कुयोग के बलाबल से धन की वृद्धि या हानि कहनी चाहिये ॥ १५—१६ ॥

वि०—प्राचीन हस्तलिखित पुस्तक में "बुधयुक्तो गुरुस्त्व" इसी प्रकार का पाठ है। छपे हुए पुस्तकों में 'बुधदृष्टो गुरुस्तत्र' ऐसा पाठ देखने में आता है। परञ्च इस प्रकार "त्वत्र" के स्थान में लेखक, अध्यापक आदि के दोष से "तत्र" बना दिया गया है। क्योंकि यहाँ ग्रन्थकार ने "नवमस्थानं धनमित्युच्यते" ऐसा आरम्भ में ही प्रतिज्ञा की है तथा "क-प-ट-यवर्गभवैः" इत्यादि नियमानुसार भी 'धन' शब्द से नवमभाव ही सिद्ध होता है इसलिये धन (अर्थात् नवम) में शुभग्रहों के योग से भाग्य वृद्धि होने के कारण परम धन योग कहा गया है तथा "त्वत्र = २४ द्वादशतष्टित शेष ० से द्वादश भाव सिद्ध होता है, इसलिये धनकारक बुध गुरु चन्द्र इनके व्यय भाव पड़ने से व्यय की वृद्धि से धन हानि योग होना सम्भव है। आगे "क-ट-प-यवर्गभवैः" इसी नियम के अनुसार दशावर्ष की संख्या को ग्रहण किया गया है ।

परञ्च इस आशय को नहीं समझकर 'धन' और 'तत्र' से द्वितीय भाव समझकर चौखम्भा से प्रकाशित पुस्तक में—धनभाव में शुभग्रह हों तो "पूर्णधन" फिर उसी में बुध और गुरु के योग से "धननाश"—ऐसा विरुद्ध अर्थ किया गया है जो असङ्गत और अमान्य है। क्योंकि समस्त जातकशास्त्र में 'बुध गुरु के योग से भाव की वृद्धि ही कही गई है। जैसा—अधिपयुतो दृष्टो वा बुधजीवयुतेक्षितश्च या राशिः। स भवति बलवान्" इत्यादि। वास्तव में यहाँ ग्रन्थकार ने विरोधाभास अलङ्कार में द्वादश भाव के स्थान में 'त्वत्र' शब्द का प्रयोग किया है। विज्ञ जन इसे निष्पक्षपात विचार करें। इति ॥ १६ ॥

इति दारिद्र्ययोगाध्यायः ॥ ४ ॥

अथ दशाफलाध्यायः ॥ ५ ॥

वक्ष्येऽहं सारमुद्धृत्य ज्योतिःशास्त्राम्बुधेस्ततः ।
दशां सौख्यप्रदां नृणां ग्रहाणां दृष्टियोगतः ॥ १ ॥

ज्योतिषशास्त्रों के तत्त्व निकाल कर शुभप्रद दशा को कहते हैं ॥१॥

सूर्यादि ग्रहों की विंशोत्तरी दशावर्षसंख्या—

तनु-नित्य-सना-देया तया धान्या सटा सना ।
नरेति संख्या विज्ञेयाः क्रमात् सूर्यादि-खेचराः ॥ २ ॥

तनु (६ वर्ष) सूर्य की दशा। नित्य = (१० वर्ष) चन्द्रमा की। सना = (७ वर्ष) मंगल की। देया (१८) राहु की। तया (१६) गुरु की। धान्या (१९) शनि की। सटा (१७) बुध की। सना (७) केतु की और नरा (२० वर्ष) शुक्र की विंशोत्तरी दशा होती है ॥ २ ॥

वि०—यहाँ—"क-प-ट-यवर्गभवैरिह पिण्डान्त्यैरक्षरैरङ्काः ।
नि ञि च शून्यं ज्ञेयं तथा स्वरे केवले कथितम् ॥

इस नियम से संख्या ली गई है। अर्थात् क से झ तक। ट से ध तक। प से म तक और य से ह तक। एक आदि अङ्क समझकर 'अङ्कानां वामतो गतिः' इस नियम से संख्या बनती है। न, ञ और केवल स्वर

से शून्य समझा जाता है। तथा संयुक्त अक्षर के अंतिम अक्षर से अङ्क ग्रहण करना चाहिये। जैसा कि ऊपर स्पष्ट है ॥ २ ॥

अथ अन्तर्दशाधन—

स्वदशा रामगुणिता पृथक् स्वस्वदशाहता।
खाग्निभक्ता दिनाद्या हि भवेदन्तर्दशामितिः ॥ ३ ॥
एवमन्तर्दशा स्वस्वदशामानेन संगुणा।
शून्यलोचनचन्द्राप्ता प्रत्यन्तरदशा भवेत् ॥ ४ ॥
प्रत्यन्तरदशा चैव स्वस्वमानेन सङ्गुणा।
शून्यलोचनचन्द्रमाप्ता भवेत् सूक्ष्मदशामितिः ॥ ५ ॥
सा च स्वस्वदशानिघ्ना खार्काप्ता लब्धिसम्मिता।
ज्ञेया प्राणदशा, वाच्यं फलं तदनुसारतः ॥ ६ ॥

जिस ग्रह की महादशा में अन्तर्दशा बनानी हो उसकी दशावर्ष संख्या को ३ से गुणा करके फिर उस गुणनफल को अपनी दशा संख्या से गुना करने से दिनादि अन्तर्दशा होगी। उसमें ३० के भाग देने से मासादि अन्तर्दशा का मान समझना। इस प्रकार अन्तर्दशा को अपनी-अपनी दशासंख्या से गुना करके १२० के भाग देने से प्रत्यन्तरदशा (विदशा) होती है। इसी प्रकार विदशा पर से सूक्ष्मदशा और सूक्ष्मदशा से प्राणदशा बनाकर समझना। उसके अनुसार फल कहना चाहिये।

उदाहरण—लघुपाराशरी ३ श्लोक की टीका में देखिये ॥ ३-६ ॥

शुभाऽशुभफलं प्राहुर्नृणां कालविदो जनाः।
एतन्निर्णयतो नृणामायुषो निर्णयो भवेत् ॥ ७ ॥

मनुष्यों के जो शुभाशुभ फल कहे गये हैं, उसके अनुसार ही आयुर्दाय का निर्णय होता है ॥ ७ ॥

पञ्चमेशदशायान्तु धर्मपान्तर्दशा हि या।
अतीव शुभदा प्रोक्ता कालविद्भिर्मुनीश्वरैः ॥ ८ ॥

पञ्चमेश की दशा में नवमेश की अन्तर्दशा अति शुभप्रदा होती है ॥

समन्त्रनाथस्य तपोऽधिपस्य दशा शुभा राज्यसुतप्रदा स्यात्।
सकीर्तिनाथस्य सुखेश्वरस्य दशां तथा प्राहुरुदारचित्ताः ॥९॥

पञ्चमेश नवमेश से युक्त हो तो इनकी दशा अन्तर्दशा राज्य और पुत्र देनेवाली होती है। नवमेश युक्त चतुर्थेश की दशा भी वैसे ही शुभप्रदा होती है ॥ ९ ॥

पञ्चमेशेन युक्तस्य ग्रहस्य शुभदा दशा।
तथा धर्मपयुक्तस्य दशा परमशोभना ॥ १० ॥

कोई भी ग्रह पञ्चमेश या नवमेश से युक्त हो तो उसकी भी दशा शुभ होती है ॥ १० ॥

पापयुक्तस्य खेटस्य दशा हानिकरी मता।
शुभयुक्तस्य खेटस्य दशा द्रव्यप्रदा भवेत् ॥ ११ ॥

पापग्रह से युक्त ग्रह की दशा अशुभ और शुभग्रह से युक्त ग्रह की दशा शुभ होती है ॥ ११ ॥

सपञ्चमेश-लग्नेश-दशा राज्यप्रदायिनी।
तथा धर्मपयुक्तस्य लग्नपस्य दशा मता ॥ १२ ॥

पञ्चमेश या नवमेश से युक्त लग्नेश की दशा भी राज्य देनेवाली होती है ॥ १२ ॥

सपञ्चमेशस्य तपोऽधिपस्य दशा भवेद्राज्यसुखार्थदात्री।
तथैव मानाधिपसंयुतस्य सुतेश्वरस्यापि दशा शुभा स्यात् ॥१३॥
पञ्चमेशेन युक्तस्य मानेशस्य दशा शुभा।
सुखेशसहितस्यापि धर्मेशस्य दशा शुभा ॥१४॥

पञ्चमेश से युत नवमेश और दशमेश की दशा राज्य सुख देनेवाली होती है। तथा चतुर्थेश से युत दशमेश की दशा भी शुभप्रद होती है ॥

वि०—इन श्लोकों में पुनरुक्ति दोष है।

तथा शुभस्थानगमानपस्य दशा हि मानार्थसुखप्रदा स्यात्
दशा नृणां सौख्यकरी सदैव सुखेशयुक्तस्य च मानपस्य ॥१५॥

नवम स्थानस्थित दशमेश की तथा चतुर्थेश युक्त दशमेश की दशा शुभप्रद (सुख और प्रतिष्ठा देनेवाली) होती है ॥१५॥

षष्ठस्य सप्तमस्य को नायको मानभावगः।
दशा तस्य शुभा ज्ञेया मानपेन युतस्य च ॥१६॥
एको द्विसप्तमस्थाननायको यदि सौख्यगः।
सुखेशेन युतस्तस्य दशा शुभफलप्रदा ॥१७॥
षष्ठाऽष्टमव्ययाधीशाः पञ्चमाधिपसंयुताः।
तेषां दशाश्च शुभदाः प्रोच्यन्ते कालवित्तमैः ॥१८॥
सुखेशो मानभावस्थो मानेशः सुखराशिगः।
तयोर्दशा शुभामाहुर्ज्यौतिःशास्त्रविदो जनाः ॥१९॥

इन श्लोकों से केन्द्र और त्रिकोण स्थान का महत्त्व कहते हैं। षष्ठेश (रोगेश) सप्तमेश (मारकेश) होने पर भी यदि दशम भाव में हो तो उसकी दशा शुभ होती है। यदि द्वितीय और सप्तम दोनों मारक स्थान का पति एक ही ग्रह होकर भी यदि चतुर्थ स्थान में चतुर्थेश से युक्त हो तो दशा शुभप्रदा होती है। षष्ठेश, अष्टमेश, या द्वादशेश भी यदि पञ्चमेश से युक्त हो तो उनकी दशा भी शुभप्रद होती है। यदि चतुर्थेश दशवें भाव में और दशमेश चतुर्थ भाव में हो तो इन दोनों की दशा शुभप्रद होती है ॥१६-१९॥

सुखेश-मानेश-सुतेश-धर्मनाथा युताः स्युर्यदि यत्र कुत्र।
तेषां दशा राज्यसुतप्रदास्तैर्युक्तग्रहाणामपि सत्फला स्यात् ॥२०॥

चतुर्थेश, दशमेश, पञ्चमेश और नवमेश ये चारो किसी स्थान में

युक्त हो तथा इन सबों से युक्त जो ग्रह हो उनकी दशा राज्यदायिनी होती है ॥२०॥

वाहनस्थानसंयुक्तमन्त्रपस्य दशा शुभा।
सुखराशिस्थकर्मेश-दशा राज्यप्रदायिनी ॥२१॥
ताभ्यां युक्तस्य खेटस्य दृष्टियुक्तस्य चैतयोः।
राज्यप्रदां दशां प्राहुर्विद्वांसो दैवचिन्तकाः ॥२२॥
कर्मस्थानस्थ-बुद्धीश-दशा सम्पत्करी स्मृता।
मानस्थित-तपोऽधीश-दशा राज्यप्रदायिनी ॥२३॥

चतुर्थ स्थान में स्थित पञ्चमेश, और दशमेश की दशा भी शुभ होती है। तथा चतुर्थेश, और पंचमेश से युक्त दृष्ट ग्रहों की दशा भी शुभ होती है। दशम स्थान में स्थित पञ्चमेश और नवमेश की भी दशा शुभ होती है ॥२१-२३॥

इति शुभदशाफलाध्यायः ॥५॥

—:—

अथान्तर्दशाफलाध्यायः ॥६॥

अथ वक्ष्ये खगेन्द्राणां सकलान्तर्दशाफलम्।
लग्नेशे स्वनवांशस्थे भुक्तिः शुभफलप्रदा ॥१॥
स्वद्वादशांशगे लग्ननाथे वा स्वदृकाणगे।
भुक्तिं शुभफलामाहुर्यवनाः कालवित्तमाः ॥२॥
स्वत्रिंशांशे तथा मित्रत्रिंशांशेऽवस्थितो यदि।
तस्य भुक्तिः शुभा प्रोक्ता कालविद्भिर्मुनीश्वरैः ॥३॥
मित्रक्षेत्रनवांशस्थे मित्रस्य द्वादशांशके।
तस्य भुक्तिः शुभा प्रोक्ता कालविद्भिर्मुनीश्वरैः ॥४॥

अब सब प्रकार की अन्तर्दशा के फल को कहते हैं। लग्नेश यदि अपने नवांश में हो, अपने द्वादशांश में, अपने द्रेष्काण में, त्रिशांश में, वा मित्र के त्रिशांश, या मित्र के नवांश, मित्र के द्वादशांश में हो तो उसकी भुक्ति (अन्तर्दशा) शुभप्रदा होती है ॥ १-४ ॥

बुद्धिक्षेत्रनवांशे वा पुत्रस्य द्वादशांशके।
मन्त्रद्रेष्काणके यः स्यात् तस्य भुक्तिः शुभावहा ॥ ५ ॥
तपोराशिनवांशे वा धर्मस्य द्वादशांशके।
गुरुद्रेष्काणके यः स्यात् तस्य भुक्तिः शुभप्रदा ॥ ६ ॥
सुखराशिनवांशे वा वाहनद्वादशांशके।
बन्धुद्रेष्काणके यः स्यात् तस्य भुक्तिः शुभावहा ॥ ७ ॥

पञ्चम भाव के नवांश, द्वादशांश वा द्रेष्काण में जो ग्रह हो उसकी अन्तर्दशा शुभ होती है। नवम भाव के नवांश, द्वादशांश वा द्रेष्काण में जो ग्रह हो उसकी अन्तर्दशा शुभप्रद होती है। चतुर्थ भाव के नवांश, द्वादशांश, वा द्रेष्काण में जो ग्रह हो उसकी भी अन्तर्दशा शुभ होती है ॥ ५-७ ॥

विलग्ननाथस्थितभांशनाथो मित्रांशके मित्रखगेन दृष्टः।
सुहृद्दृष्काणेऽस्य नवांशके वा तदाऽस्य भुक्ति शुभदां वदन्ति ॥८

लग्नेश जिस राशि नवांश में हो उसका स्वामी यदि मित्र के नवांश, मित्र के द्वादशांश वा मित्र के द्रेष्काण में बैठा हो और मित्र से देखा जाता हो तो उसकी अन्तर्दशा शुभ होती है ॥ ८ ॥

अथ वक्ष्ये विशेषेण दशां कष्टप्रदां नृणाम्।
षष्ठाऽष्टमव्ययेशानां दशा कष्टप्रदायिनी ॥ ९ ॥
मारकेशेन षष्ठेशो युक्तो लग्नाधिपोऽथवा।
तस्य भुक्तौ ज्वरप्राप्तिरित्युक्तं कालवित्तमैः ॥ १० ॥

सशरीरेशलग्नेशो रविषड्वर्गगो यदि।
तस्य भुक्तौ भवेत् पीडा पित्तजां न च संशयः ॥११॥
सरोगेशः शरीरेशश्चन्द्रषड्वर्गगो यदि।
जलदोषस्तस्य भुक्तौ स्यादजीर्णो न संशयः ॥१२॥
देहेशयुक्तषष्ठेशो भौमषड्वर्गगो यदि।
तस्य भुक्तौ भवेद्रोगौ रुधिरोत्था न संशयः ॥१३॥

अब विशेषकर कष्टप्रद दशा को कहते हैं। षष्ठेश अष्टमेश द्वादशेश की अन्तर्दशा अशुभ होती है। यदि मारकेश से युक्त षष्ठेश और लग्नेश हो तो उसकी अन्तर्दशा में ज्वर होता है। यदि षष्ठेश के साथ रवि के षड्वर्ग में हो तो उसकी दशा में पित्त रोग, चंद्रमा के षड्वर्ग में हो तो जल दोष से रोग, मंगल के वर्ग में हो तो रुधिर विकार से रोग होता है।

षष्ठेशयुतलग्नेशाद् बुधषड्वर्गगो यदि।
तस्य भुक्तौ भवेद् वायुर्वाता वा देहजाड्यकृत् ॥१४॥
सौरिनाथविलग्नेशो गुरुषड्वर्गगो यदा।
तस्य भुक्तौ कफोद्भूता पीडा ब्राह्मणजाऽथवा ॥१५॥
षष्ठेशयुतलग्नेशो भृगुषड्वर्गगो यदि।
तस्य भुक्तौ शुक्रदोषात् पीडा स्त्रीसंगमेन च ॥१६॥
रोगेशयुक्तलग्नेशः शनिषड्वर्गगो यदि।
तष्य भुक्तौ भवेद्वातः सन्निपातोऽथवा नृणाम् ॥१७॥

षष्ठेश युत लग्नेश यदि बुध के वर्ग में हो तो उसकी अन्तर्दशा में वायु विकार, वा महावात रोग की पीड़ा, बृहस्पति के षड्वर्ग में हो तो कफ रोग, अथवा ब्राह्मणों से कष्ट, शुक्र के वर्ग में हो तो स्त्री संगजन्य वीर्य दोष से रोग, शनि के वर्ग में हो तो वायु अथवा सन्निपात रोग का भय होता है ॥ १४-१७ ॥

लग्नरोगेशयोर्मध्ये मारकान्तर्दशा यदि ।
तदा ज्ञेयं महत्कष्टं शस्त्रघातादिकं भयम् ॥१८॥

लग्नेश या षष्ठेश की दशा में मारकेश की अन्तर्दशा हो तो उस समय महाकष्ट और शस्त्रघात का भय होता है ॥ १८ ॥

मृतौ स्थिताः सैंहिक-केतु-मन्द-महीसुता मारकसंयुताश्चेत् ।
रोगो नराणामथ तद्दशासु,भवेत्तदा श्वासविसूचिकाभिः॥१९॥

यदि राहु, केतु, शनि या मंगल अष्टमभाव में मारकेश से युक्त हो तो उस की दशा अन्तर्दशा में श्वास और विसूचिका (हैजा, प्लेग) रोग होता है ॥ १९ ॥

एवं भ्रात्रादिभावानां नायको यत्र संस्थितः ।
तत्तत् षड्वर्गयोगेन तत्तद्भावफलं वदेत् ॥ २० ॥

जिस प्रकार षष्ठेश के साथ लग्नेश से अपने शरीर का कष्ट ऊपर कहे गये हैं, उसी प्रकार भ्रातृ भावेश (तृतीयेश) से भाई का, चतुर्थेश से माता का, इत्यादि सब भावों से अपने सम्बन्धियों का फल समझना चाहिये ॥

लग्नेश-रोगनाथौ च निधनेशेन संयुतौ ।
मारकेशयुतौ क्रूरौ रोगनाथाङ्गपौ यदा ॥२१॥
तयोर्भुक्तौ विजानीयात् व्यथां शस्त्रेण वा नृणाम् ।
शुभयोगेन बाधा स्यात् पापयोगेन मृत्युकृत् ॥२२॥

लग्नेश और षष्ठेश यदि अष्टमेश से वा मारकेश से युक्त हो तथा स्वयं क्रूर (पाप) हो तो उन दोनों की अन्तर्दशा में शस्त्र के आघात से पीडा होती है। यदि शुभ ग्रह का योग हो तो रोग की बाधा मात्र होती है, पापग्रह का योग हो तो मृत्युप्रद क्लेश होता है ॥२१-२२॥

जीवांशे जीववर्गोत्था मूलांशे मूलवर्गतः ।
धात्वंशे धातुवर्गाच्च पीडा भुक्त्यनुसारतः ॥ २३ ॥

यदि उपर्युक्त पीड़ाकारक ग्रह जीव-नवमांश में हो तो जीववर्ग (मनुष्य, पशु आदि) से पीड़ा, मूलनवांश में हो तो मूलवर्ग (फल-मूल-कन्द-काष्ठ आदि) से पीड़ा, धातु नवांश में हो तो धातुवर्ग (सोना, चाँदी, लोहा, पत्थर आदि) से पीड़ा होती है ॥ २३ ॥

नवांश के जीव, मूल, धातु संज्ञा षट्पञ्चाशिका में—

" धातु मूलं जीवमित्योजराशौ युग्मे विद्यादेतदेव प्रतीपम्" ।

अर्थात् विषम राशियों में प्रथम नवांश से आरम्भ कर धातु, मूल, जीव, इस क्रम से ३ आवृत्ति से तथा सम राशियों में जीव, मूल, धातु इस क्रम से ३ आवृत्ति से वर्तमान नवांश तक गिन कर समझना चाहिए।

मेष स्थित लग्नेश अष्टमेश की स्थिति से दशाऽन्तरदशाफल—

विलग्ननाथश्च नवांशनाथो
रन्ध्रेश्वरः स्थानपदृष्टयुक्तौ ।
मेषस्य षड्वर्गगतौ यदा तौ
भुक्तौ तयोर्जम्बुकजातिभीतिः ॥ २४ ॥

लग्नेश वा लग्ननवांशेश और अष्टमेश दोनों यदि मेष के षड्वर्ग में हो और स्थानपति (मेषपति = मङ्गल) से युत दृष्ट युक्त हो तो उनकी दशा में शृगाल से भय समझना ॥ २४ ॥

वृषवर्गगतौ तौ चेद् व्याघ्राद् भीतिं वदेन्नृणाम् ।
युग्मवर्गगतौ चेद् कपितो भयमादिशेत् ॥ २५ ॥
कर्कवर्गगतौ तौ चेद् रासभाद् भयमादिशेत् ।
सिंहवर्गगतौ तौ चेद् तद्भुक्तौ व्याघ्रजं भयम् ॥ २६ ॥
कन्यावर्गगतौ तौ चेद्भल्लुकाद् भयमादिशेत् ।
तुलावर्गगतौ तौ चेद् तद्भुक्तौ च मृगाद् भयम् ॥ २७ ॥
अलिवर्गगतौ भुक्तौ तयोः सारङ्गजं भयम् ।

तौ चेत् कार्मुकवर्गस्यौ तद्भुक्तावश्वजं भयम् ॥ २८ ॥
मृगवर्गगतौ भुक्तौ तौ तयोः कण्टकजं भयम् ।
कुम्भवर्गगतौ चेद् गोलांगूलाद् भयं वदेत् ॥ २९ ॥
मीनवर्गगतौ भुक्तौ मेषाश्वग्राहजं भयम् ।
एवं देहादिभावानां षड्वर्गगतिभिः फलम् ॥ ३० ॥

यदि मेषस्थित लग्नेश और अष्टमेश वृष के वर्ग (द्वादशांश आदि) में हो तो उनकी दशा में व्याघ्र का भय, मिथुन के वर्ग में हो तो वानर का भय, कर्क के वर्ग में हो तो गदहे का भय, सिंह के वर्ग में हो तो व्याघ्र का भय, कन्या वर्ग में हो तो भालू से भय, तुला के वर्ग में हो तो मृग से भय , वृश्चिक के वर्ग में हो तो सारङ्ग (हाथी और हरिण) का भय, धनु के वर्ग में हो तो घोड़े का भय, मकर के वर्ग में हो तो काँटे का भय, कुम्भ के वर्ग में हो तो गोपुच्छ से भय और मीन के वर्ग में हो तो भेंडा, घोड़ा और ग्राह(जल जन्तु) से भय कहना चाहिये। इस प्रकार मेषराशि में स्थित लग्नेश अष्टमेश से अपना फल समझना। तथा इसी प्रकार भ्रातृ (३) भाव आदि से भाई आदि का भी फल विचार करना चाहिए। २५-३० ॥

वृषस्थित लग्नेश अष्टमेश के वर्गवश अन्तर्दशा फल—

लग्नेश्वरो रन्ध्रपतिश्च युक्तौ वृषे वृषांशे त्वथ तद्दृकाणे ।
स्थितौ भवेतां यदि वा वृषेण घाताद्भयं यस्य तयोर्हि भुक्तौ ॥
वृषे युग्मांशगौ तौ चेद् तद्भुक्तौ व्याघ्रजं भयम् ।
वृषे कर्कांशगौ तौ चेद् धनुराद्यैर्भयं वदेत् ॥ ३२ ॥
वृषे सिंहांशगौ तौ चेद् सिंहव्याघ्रादितो भयम् ।
वृषे कन्यांशगौ चेत् चेत् तद्भुक्तौ कपितो भयम् ॥ ३३ ॥
वृषे तुलांशगौ तौ चेत् तद्भुक्तौ द्विपदाद् भयम् ।

वृषे वृश्चिकवर्गस्थौ भयं वाच्यं सरीसृपात् ॥३४॥
वृषे चापांशगौ तौ चेत् तद्भुक्तौ शस्त्रतो भयम् ।
वृषे मृगांशगौ चेत् तद्भुक्तौ महिषाद् भयम् ॥३५।
वृषे कुम्भांशगौ तौ चेद् गोलाङ्गूलाद् भयं वदेत् ।
वृषे मीनांशगौ तौ चेत् तयोर्भुक्तौ मृगाद् भयम् । ३६॥

लग्नेश और अष्टमेश दोनों यदि वृषराशि में वृष के अंश (द्रेष्काण द्वादशांशादि) में हो तो उनकी अन्तर्दशा में बैल के आघात का भय, मिथुन के द्वादशांश में हो तो बाघ का भय, कर्क के द्वादशांश से धनुष, बन्दूक आदि का भय, सिंह के द्वादशांश में हो तो सिंह व्याघ्र से भय, कन्या के द्वादशांश में हो तो बानर का भय, तुला के नवांश में हो तो मनुष्य से भय, वृश्चिक के द्वादशांश में हो तो सर्पादि का भय, धनु का द्वादशांश हो तो शस्त्र से भय, मकर के द्वादशांश में हो तो भैंस का भय, कुम्भ के द्वादशांश में हो तो गोपुच्छ से आघात का भय, मीन के द्वादशांश में हो तो हरिण आदि का भय समझना चाहिए ॥ ३१–३६ ॥

वि० यहाँ अंश शब्द से वर्ग या द्वादशांश समझना, नवमांश नहीं। क्योंकि किसी भी राशि में १२ राशियों के नवांश नहीं हो सकते है। टीकाकार ने अंश से नवांश ग्रहण किया है वह परम असङ्गत है।

सिंहराशिस्थ लग्नेश अष्टमेशवश अन्तर्दशा फल—

शरीरनाथो मरणाधिपेन युक्तो मृगेन्द्रे च मृगाधिपांशे ।
तयोर्विपाके भयमाखुवर्गात् सर्पात्तथा प्राहुरुदारचित्ताः ॥३७।
सिंहे कन्यांशगौ तौ चेत् तद्भुक्तौ कपितो भयम् ।
सिंहे यदि तुलांशस्थौ तद्भुक्तौ ज्वरतो भयम् ॥३८॥
अल्यंशगौ मृगेन्द्रे चेत् तदा भीतिः सरीसृपात् ।
सिंहे चापांशगौ तौ चेत् तद्भुक्तौ वाजितो भयम् ॥३९॥
मृगांशगौ मृगेन्द्रे च तयोर्दाये ज्वराद् भयम् ।

सिंहे कुम्भांशगौ तौ चेत् तद्भुक्तौ च नृपाद् भयम् ॥४०॥
सिंहे मीनांशगौ तौ चेत् सारंगाद् भयमादिशेत् ।
सिंहे मेषांशगौ तौ चेद् गोमायोर्भयमादिशेत् ।४१॥
सिंहे वृषांशगौ तौ चेत् तयोर्दाये शुभा मताः ।
सिंहे युग्मांशगौ तौ चेद् गोपुच्छाद् भयमादिशेत् ॥४२॥
सिंहे कर्कांशगौ तौ चेदग्निदाहभयं गृहे ।
एवं भ्रात्रादिभावेशात् तद्भुक्तौ तद्भयं वदेत् ॥४३॥

लग्नेश और अष्टमेश दोनों सिंह में स्थित होकर सिंह के द्वादशांश में हों तो उनकी अन्तर्दशा में चूहे और सर्पों का भय कहना, यदि कन्या के द्वादशांश में हो तो बानर से, तुला के द्वादशांश में हो तो ज्वर से, वृश्चिक के द्वादशांश में हो तो सर्प, बिच्छू आदि से, धनुके द्वादशांश में हो तो घोड़ों से, मकर के अंश में हो तो ज्वर से, कुम्भ के अंश में हो तो राजा से, मीन के अंश में हो तो हाथी आदि से भय कहना। इसी प्रकार तृतीयादि भावेश की स्थिति से भाई आदि का फल समझना ॥ ३७-४३ ॥

धनुराशि गत लग्नेश और अष्टमेशवश अन्तर्दशा फल—

देहाधिपो मृत्युपसंयुतश्चेच्चापांशगौ कार्मुकराशिगौ चेत् ।
दाये तयोर्वाजिकृतां च भीतिं वदन्ति कालज्ञजना महान्तः ॥
चापे मृगांशगौ तौ चेत् सारङ्गाद् भयमादिशेत् ।
चापे कुम्भांशगौ तौ चेद्वराहाद्भयमादिशेत् ॥ ४५ ॥
चापे मीनांशगौ तौ चेत् तद्भुक्तौ नक्रतो भयम् ।
मेषांशकगतौ चापे तदा भीतिश्चतुष्पदात् ॥४६॥
चापे वृषांशगे तौ तु रासभाद् भयमादिशेत् ।
चापे युग्मांशगौ तौ चेद् वानराद् भयमादिशेत्

चापे कर्कांशगौ तौ चेत् तद्भक्तावाखुतो भयम् ।
सिंहांशगौ हयाङ्गे तु जम्बुकाद् भयमादिशेत् ॥ ४८ ॥
चापे कन्यांशगौ तौ चेद् गोलांगूलाद् भयं वदेत् ।
चापे तुलांशगौ तौ चेदुष्ट्राद् भीतिं समादिशेत् ॥ ४९ ॥
अल्यंशगौ हयाङ्गे तौ तद्भुक्तौ सर्पतो भयम् ।
एवं भ्रात्रादिभावानां फलमाहुर्मनीषिणः ॥ ५० ॥

लग्नेश और अष्टमेश यदि धनुराशि में धनु के अंश (द्वादशांशादि) में हो तो उनकी दशा अन्तर्दशा में घोड़ों का भय कहना, यदि मकर के अंश में हो तो हाथी से, कुम्भ के अंश में हो तो सूअरों से, मीन के अंश में हो तो गोह से, मेष के अंश में हो तो पशु से, वृष के अंश में हो तो गदहे से, मिथुन के अंश में हो तो वानर से, कर्क के अंश में हो तो चूहे से, सिंह के अंश में हो तो सियार से, कन्या के अंश में हो तो गोपुच्छ से, तुला के अंश में हो तो ऊंट से, वृश्चिक के अंश में हो तो सर्प से लग्नेश और अष्टमेश की अन्तर्दशा में भय समझना चाहिए ॥ ४४-५० ॥

मकरराशिगत लग्नेश अष्टमेश के अन्तर्दशा फल—

लग्नेश्वरो नैधननायकश्च मृगे मृगांशोपगतौ च युक्तौ ।
भीतिर्भवेत्तर्हि तयोस्तु भुक्तौ विवादतश्चेति वदन्ति सन्तः ॥५१॥
मृगे कुम्भांशगौ तौ चेद् भल्लुकाद् भयमादिशेत् ।
मृगे मीनांशगौ तौ चेत् सारङ्गाद् भयमादिशेत् ॥ ५२ ॥
मृगे मेषांशगौ तौ चेत्तद्भुक्तौ जलतो भयम् ।
मृगे वृषांशगौ तौ चेद् वज्रतो भयमादिशेत् ॥ ५३ ॥
मृगे युग्मांशगौ तौ चेत्तद्भुक्तौ हरिणाद् भयम् ।
मृगे कर्कांशगौ तौ चेत् तयोर्भुक्तौ भयं गजात् ॥ ५४ ॥

मृगे सिंहांशगौ तौ चेत् महापातकजं भयम् ।
मृगे कन्यांशगौ तौ तु वानराद् भयमादिशेत् ॥ ५५ ॥
मृगे तुल्यांशगौ तौ चेत् तद्युक्तौ नकुलाद् भयम् ।
अल्यंशगौ मृगास्ये तु मार्जाराद् भयमादिशेत् ॥ ५६ ॥
चापांशगौ मृगास्ये तु रासभाद् भयमादिशेत् ।
एवं निश्चित्य मतिमान् पित्रादीनां फलं वदेत् ॥ ५७ ॥

यदि लग्नेश और अष्टमेश मकर राशि और मकर के अंश में हो तो विवाद का भय, कुम्भके अंश में हो तो भालू का, मीन के अंश में हो तो हाथी का, मेष के अंश में हो तो जल का, वृष के अंश में हो तो वज्र का, मिथुन के अंशमें हो तो हरिण का, कर्क के अंश में हो तो हाथी का, सिंह के अंश में हो तो महापातक (गो वधादि पाप) का, कन्या के अंश में हो तो बानर का, तुला के अंश में हो तो न्यौले का, वृश्चिक के अंश में हो तो बिलार का और धनु के अंश में हो तो गदहे का भय कहना। इसी प्रकार पित्रादिक भाव से पिता आदि का फल समझना चाहिए ॥

इति अन्तर्दशाफलाध्यायः ॥ ६ ॥

अथ कारकदशाफलाध्यायः ॥ ७ ॥

अथ वक्ष्ये खगेन्द्राणां जातिभेदाच्छुभाऽशुभम् ।
बालानां बोधनार्थाय सारं संगृह्य शास्त्रतः ॥ १ ॥
विप्रो देवेज्य-शुक्रौ च क्षत्रियौ रविभूमिजौ ।
निशाकरबुधौ वैश्यौ शनिः शूद्रोऽन्त्यजस्तमः ॥ २ ॥

अब ग्रहों की जाति कहते हैं। गुरु शुक्र ब्राह्मण, रवि मङ्गल क्षत्रिय, चन्द्र बुध वैश्य, शनि शूद्र और राहु केतु अन्त्यज हैं ॥ १— २॥

मीनादयः क्रमाज्ज्ञेया विप्र-क्षत्र-विशो-ऽङ्घ्रिजाः ।
एतेषां दृष्टियोगाभ्यां फलमाहुर्महर्षयः॥ ३ ॥

मीन से आरम्भ कर क्रम से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र इस प्रकार १२ राशियों के वर्ण समझना। इसी के अनुसार ग्रह और राशियों के फल भी कहे गये हैं ॥ ३ ॥

लग्नादि १२ भावों के कारक ग्रह—

सूर्यो गुरुः कुजः सोमो गुरुर्ज्ञश्च सितः शनिः ।
गुरु-चन्द्रेज्य-मन्दाश्च क्रमशो भावकारकाः ॥ ४ ॥

रवि १ गुरु २ मंगल ३ चन्द्र ४ गुरु ५ बुध ६ शुक्र ७ शनि ८ गुरु ९ चन्द्र १० गुरु ११ और शनि १२ ये लग्नादि १२ भावों के कारक हैं ॥४॥

पिता रविर्मातृकरः शशाङ्को भ्राता बुधार्की भृगुनन्दनश्च ।
भौमः सुतो मित्रखगो रविः स्याच्छत्रुग्रहौ राहु-शनैश्चरौ स्मृतः ॥५॥
शनि-भौमो पितुर्भावे पक्षा जीव-ज्ञ-भार्गवाः ।
मातुर्भावेऽथ राजानौ रवि-चन्द्रमसौ स्मृतौ ॥ ६ ॥
भूसूनुर्नायको ज्ञेयो बुधः पुत्रः प्रकीर्तितः ।
सचिवौ भृगु-जीवौ च शनिः प्रेष्यश्च कथ्यते ॥ ७ ॥

रवि पितृकारक, चन्द्रमा मातृकारक, बुध शनि शुक्र ये भ्रातृकारक, मंगल पुत्रकारक, रवि मित्रकारक और शनि राहु शत्रुकारक हैं। शनि मंगल पितृपक्षीय (चाचा आदि बन्धु), तथा गुरु बुध शुक्र ये मातृपक्ष (मौसी, चाची आदि मातृसजातीय) ग्रह हैं। रवि चन्द्रमा राजा, मंगल नेता, बुध राजकुमार, गुरु शुक्र मन्त्री और शनि भृत्य ग्रह हैं। इसी के अनुसार फल समझना चाहिये। कहा भी है कि—"सबला ग्रहाश्च कुर्वन्ति जन्मसमये निजमेव रूपम्"। अर्थात् जन्मसमय जो ग्रह बली होते हैं उनके समान ही सब गुण जातक में होते हैं। तथा जिस भाव के कारक ग्रह बली होते हैं उस भाव की वृद्धि, जो निर्बल होते हैं उस भाव की हानि होती है ॥ ५-७ ॥

शनिं च पितरं मेषे प्राहुः कालविदो जनाः ।
ग्रहाणां फलदातृत्वं तत्तत् पाके विनिर्दिशेत् ॥ ८ ॥

यदि शनि मेष में हो तो वह भी पितृकारक होता है। सब ग्रहों के फल अपनी-अपनी अन्तर्दशा में होते हैं ॥ ८ ॥

यद्भावेशो यस्य षड्वर्गसंस्थ-
स्तत्तत्पाके द्रव्यलाभस्ततः स्यात् ।
यद्यद्द्रव्यं यस्य खेटस्य प्रोक्तं
तत्तल्लाभं तस्य पाके वदन्ति ॥ ९ ॥

जिस भाव का स्वामी जिस ग्रह के षड्वर्ग में हो उसी के द्वारा उस ग्रह की दशा में द्रव्य लाभ समझना। तथा जिस ग्रह के जो द्रव्य कहे गये हैं उनका लाभ भी उसी ग्रह की दशा में होता है ॥ ९ ॥

यथा उदाहरण कहते हैं—

पाकेशे भास्करांशस्थे भूपान्मानं विनिर्दिशेत् ।
अथवा पितृवर्गाच्च, चन्द्रांशे मातृवर्गतः ॥ १० ॥
कुजांशे पुत्रवर्गाच्च नायकाद्वा फलं विशेत् ।
बुधांशे भ्रातृवर्गाद्वा राजपुत्राद्वदेत् फलम् ॥ ११ ॥
गुर्वंशे गुरुवर्गाद्वा सचिवाद्वा फलं दिशेत् ।
शुक्रांशे मातृवर्गाद्वा स्त्रीवर्गाद्वा फलं वदेत् ॥ १२ ॥
शन्यंशे शूद्रवर्गाद्वा प्रेष्यवर्गात् फलं वदेत् ।
राहुयुक्तेऽन्त्यजाद् वाच्यं फलमाहुर्मनीषिणः ॥ १३ ॥

यदि दशापति सूर्य के अंश (होरा नवांशादि) में हो तो राजा से अथवा पिता आदि से सुख-सम्मान का लाभ कहना। यदि चन्द्रमा के अंश में हो तो माता मातृवर्ग से, मङ्गल के अंश में हो तो पुत्र अथवा नेताओं से, बुध के अंश में हो तो भाई अथवा राजकुमारों से, गुरु के अंश में हो तो गुरुजनों अथवा मन्त्रियों से, शुक्र के अंश में हो तो माता या स्त्री वर्ग से, शनि के अंश में हो तो शूद्रों से अथवा नौकरों से तथा राहु केतु से युक्त हो तो अन्त्यजों से सुख आदि का लाभ समझना चाहिये ॥ १०-१३ ॥

पैत्रकं च फलं पाके प्रभवेच्छनि-भौमयोः ।
पाके जीव-ज्ञ-शुक्राणां मातुलाद् भृत्यवर्गतः ॥ १४ ॥

फिर विशेष कहते हैं कि--शनि और मङ्गल की दशा में पितृसम्बन्धी फल, और गुरु बुध की दशा में मामा और भृत्यवर्ग से फल-लाभ होता है ॥ १४ ॥

दशाविपाके सुरपूजितस्य ब्रह्मत्वतो ब्राह्मणजातिवर्गात् ।
संज्ञानुरूपं फलमाहुरार्याः पाके दशायाश्च नभश्चराणाम् ॥१५॥

गुरु की दशा में ब्राह्मण जाति होने के कारण ब्राह्मण जातियों से फल की प्राप्ति कहना। इसी प्रकार अपनी-अपनी संज्ञा के अनुसार ग्रहों की दशा का फल समझना चाहिये ॥ १५ ॥

इति कारकादशाफलाध्यायः ॥ ७ ॥

अथ विंशोत्तरीदशाफलाध्यायः ॥ ८ ॥

फलानि नक्षत्र-दशाप्रकारेण विवृण्महे ।
दशा विंशोत्तरी चाऽत्र ग्राह्या नाऽष्टोत्तरी मता ॥ १ ॥
कृत्तिकातः समारभ्य गणयेज्जन्मभावधि ।
नवभिश्च हरेद्भागं शेषं ग्रहदशा भवेत् ॥ २ ॥
रवौ षड् दश चन्द्रे च भौमे सप्त, विधुन्तुदे ।
अष्टादश गुरौ भूपाः शनौ चैकोनविंशतिः ॥ ३ ॥
बुधे सप्तदशाऽब्दाश्च केतौ सप्त प्रकीर्तिताः ।
नखाः शुक्रे च विज्ञेया विंशोत्तरशतं मतम् ॥ ४ ॥

अब नक्षत्र दशानुसार फल कहते हैं। यहाँ विंशोत्तरी दशा ही ग्रहण करना। कृत्तिका से जन्मनक्षत्र तक गिनकर ९ का भाग देकर क्रम से रवि आदि की दशा समझना। आगे अर्थ स्पष्ट ही है।

उदाहरण—लघुपाराशरी ३ श्लोक की टीका में देखिये ॥ १-४ ॥

अन्तर्दशासाधन—

रव्यादीनां दशा गुण्या त्रीभिः स्व - स्वदशाहताः ।
दिनाद्यन्तर्दशामानं विंशोत्तरशतात्मके ॥ ५ ॥

अर्थ स्पष्ट है। उदाहरण लघुपाराशरी श्लोक में ही देखिये ॥५॥

लघुपाराशरी में त्रिकोण के स्वामी शुभ और त्रिषडाय (३।६।११) भाव के स्वामी अशुभ, केन्द्र के स्वामी 'सम' और २, ८ १२ के स्वामी साहचर्यवश शुभ अशुभ कहे गये हैं, उसी का उदाहरण आगे के श्लोकों से कहते हैं—

मेष लग्न में जन्मवालों के शुभाशुभ दशाफलदायक ग्रह—

मन्द-सौम्य-सिताः पापाः शुभौ गुरु-दिवाकरौ ।
न शुभं योगमात्रेण प्रभवेच्छनि-जीवयोः ॥ ६ ॥
पारतन्त्र्येण जीवस्य पापकर्मापि निश्चितम् ।
कविः साक्षात् निहन्ता स्यान्मारक वेन लक्षितः ॥ ७ ॥
मन्दादयो निहन्तारो भवेयुः पापिनो ग्रहाः ।
समौ सोम-कुजावेव मेषलग्नोद्भवे फलम् ॥ ८ ॥

जिसका मेष लग्न में जन्म हो उसके लिये शनि, बुध और शुक्र ये तीनों पाप दशाफल देने वाले हैं। गुरु और सूर्य ये दोनों शुभ दशाफल देने वाले होते हैं, परञ्च शनि और गुरु के योग (सम्बन्ध) मात्र से शुभ फल नहीं होता है। क्योंकि दूसरों (पापी ग्रहों) के सम्बन्ध से गुरु में भी पापत्व होता है। केवल शुक्र ही मारकेश होने के कारण प्रबल मारक होता है। और शनि, बुध और शुक्र ये तीन पाप कारक ग्रह

मारक होते हैं। चन्द्रमा मङ्गल सम होते हैं। इस प्रकार मेष लग्नोत्पन्न मनुष्य का फल समझना चाहिये ॥ ६-८ ॥

इसकी युक्ति यह है कि - मेष लग्न में शनि दशमेश और एकादशेश है। इसलिये केन्द्रपति होने से अशुभत्व नाश होने पर भी एकादशेश होने के कारण पाप हुआ। तथा बुध, ३, ६, भाव के स्वामी होने से पाप हुआ। शुक्र (२।७) मारक स्थान के स्वामी होने से पाप हुआ। रवि पञ्चमेश होने के कारण शुभ हुआ। गुरु द्वादशेश होने पर स्थानान्तर (नवम) भाव के भी स्वामी होने के कारण शुभ हुआ। उसको शनि (पापी) के संयोग से साहचर्य वश पाप फल ही देगा क्योंकि गुरु द्वादशेश भी है। शुक्र दोनों मारक स्थान के स्वामी होने के कारण प्रबल मारक हुआ। और पापी ग्रह भी सामान्य मारक हो सकते हैं। चन्द्रमा केन्द्रपति होने के कारण और मङ्गल लग्नेश अष्टमेश होने से सम हुए सो उचित ही है, इसी तरह सब लग्नों के फल आगे कहे हैं ॥

वृष लग्नोत्पन्न मनुष्य के शुभाशुभ दशाफलदायक ग्रह—

जीवशुक्रेन्दवः पापाः शुभौ शनि-बुधौ स्मृतौ ।
राजयोगकरः साक्षादेक एव रवेः सुतः ॥ ९ ॥
भौमो जीवादयः पापाः सन्ति मारकलक्षणाः ।
रविः समो बुधैर्ज्ञेयं वृषलग्नोद्भवे फलम् ॥ १० ॥

वृष लग्न में जिसका जन्म हो उसके वृहस्पति शुक्र चन्द्रमा ये पाप दशाफलदायक; शनि, बुध शुभ दशा फलदायक होते हैं। मङ्गल, गुरु और शुक्र चन्द्रमा ये मारक होते हैं। रवि सम होता है ॥ ९-१० ॥

मिथुनलग्नोत्पन्न के शुभाशुभ दशाफलदायक ग्रह—

भौमजीवारुणाः पापो एक एव कविः शुभः ।
शनैश्चरेण जीवस्य योगो मेषभवो यथा ॥ ११ ॥
शशी नैव निहन्ता स्यात् पापा मारकलक्षणाः ।
द्वन्द्वलग्नोद्भवे ज्ञेयं फलमेवं विचक्षणैः ॥ १२ ॥

मिथुन लग्नवाले को मङ्गल, गुरु, शनि पापफलदायक, केवल शुक्र शुभदायक होते हैं। चन्द्रमा मारकेश होने पर भी नहीं मारता है। मङ्गल आदि पापग्रह मारक होते हैं। शेष अर्थ स्पष्ट है ॥ ११-१२ ॥

कर्कलग्नोत्पन्न के शुभाशुभ दशाफलदायक ग्रह—

भार्गवेन्दुसुतौ पापौ भूसुताङ्गिरसौ शुभौ ।
एक एव ग्रहः साक्षाद् भूसुतो योगकारकः ॥ १३ ॥
निहन्ता रविजोऽन्ये तु पापिनो मारकाह्वयाः ।
कर्कलग्नोद्भवस्यैवं फलान्युक्तानि सूरिभिः ॥ १४ ॥

कर्कलग्न में जन्म वाले को शुक्र, बुध अशुभ फलदायक, मङ्गल, गुरु शुभ फलदायक होते हैं। मङ्गल विशेषकर योगकारक होता है। शनि मारक होता है। अन्य पापी ग्रह भी मारक संज्ञक होते हैं।१३-१४।

सिंहलग्नोद्भव के शुभाशुभफलदायक ग्रह—

रौहिणेयसितौ पापौ कुजजीवौ शुभावहौ ।
प्रभवेद्योगमात्रेण न शुभं गुरुशुक्रयोः ॥ १५ ॥
घ्नन्ति सौम्यादयः पापा मारकत्वेन लक्षिताः ।
सिंहलग्नोद्भवस्यैवं फलान्यूह्यानि सूरिभिः ॥ १६ ॥

सिंह लग्नोत्पन्न मनुष्य के बुध शुक्र पापफलप्रद, मङ्गल गुरु शुभप्रद हैं। गुरु, शुक्र के सम्बन्ध मात्र से योगफल नहीं मिलता है। बुध आदि पापप्रद ग्रह मारक होते हैं ॥ १५-१६ ॥

कन्यालग्नोत्पन्न के शुभाशुभ फलदायक ग्रह—

कुजजीवेन्दवः पापा एक एव भृगुः शुभः ।
भार्गवेन्दुसुतौ द्वौ च भवेतां योगकारकौ ॥ १७ ॥
न हन्ता कविरन्ये तु मारकाः स्युः कुजादयः ।
ज्ञातव्यानि फलान्येवं कन्यालग्नोद्भवस्य हि ॥ १८ ॥

कन्या लग्नोत्पन्न मनुष्य के मङ्गल, गुरु, चन्द्रमा पापफलदायक, एकमात्र शुक्र विशेष शुभप्रद होता है। शुक्र और बुध योगकारक होते हैं। शुक्र मारकेश होने पर भी (नवमेश होने के कारण) मारक नहीं होता है। मङ्गलादि पाप ग्रह मारक होते हैं ॥ १७-१८ ॥

तुलालग्नोद्भव के शुभाशुभ फलदायक ग्रह—

जीवार्कभूसुताः पापाः शनैश्चर-बुधौ शुभौ ।
भवेतां राजयोगस्य कारकौ चन्द्र-तत्सुतौ ॥ १९ ॥
कुजो निहन्ति जीवाद्याः परे मारकलक्षणाः ।
भृगुः समः फलान्येवं विज्ञेयानि तुलोद्भवे ॥ २० ॥

तुला लग्न में जन्म लेने वालों के गुरु, रवि, मङ्गल पापफलप्रद, शनि, बुध, शुभप्रद होते हैं। चन्द्रमा और बुध योगकारक होते हैं। मङ्गल मारक होता है। गुरु, रवि, मङ्गल ये भी मारक लक्षण वाले होते हैं ॥ १९-२० ॥

वृश्चिक लग्नवालों के शुभाशुभ फलद ग्रह—

बुधभौमसिताः पापाः शुभौ गुरु-निशाकरौ ।
सूर्यचन्द्रमसावेव भवेतां योगकारकौ ॥ २१ ॥
जीवो न हन्ति, सौम्याद्याः पापा मारकलक्षणाः ।
फलान्येतानि ज्ञेयानि वृश्चिकोदयजन्मनः ॥ २२ ॥

वृश्चिक लग्न में जन्म लेने वालों के बुध, मंगल, शुक्र ये पापप्रद, गुरु, चन्द्र, शुभ ग्रह, सूर्य, चन्द्रमा राजयोगकारक होते हैं। गुरु मारकेश होने पर भी नहीं मारता है। बुध आदि पापप्रद ग्रह मारक होते हैं।

धनु लग्न में उत्पन्न मनुष्य के शुभाशुभ ग्रह—

एक एव कविः पापः शुभौ भौम-दिवाकरौ ।
योगो भास्कर-सौम्याभ्यां निहन्ता ह्यंशुमत्सुतः ॥ २३ ॥

हन्ति पापग्रहः शुक्रो मारकत्वेन लक्षितः ।
ज्ञातव्यानि फलान्येवं धनुर्लग्नोद्भवस्य वै ॥ २४ ॥

धनु लग्न में जन्म लेने वालों के शुक्र पापफलप्रद, मंगल, रवि शुभप्रद हैं। रवि और बुध योगकारक होते हैं। शनि मुख्यमारक और पापग्रह शुक्र भी मारक लक्षण से युक्त होता है। २३-२४ ॥

मकर लग्न में जन्म लेने वालों के शुभाशुभ ग्रह—

कुज-जीवेन्दवः पापाः शुभौ भार्गव-चन्द्रजौ ।
स्वयं मन्दो न हन्ता स्याद् घ्नन्ति भौमादयः परे ॥२५॥
तल्लक्षणसमायुक्ताः कविरेकः सुयोगकृत् ।
मृगलग्नोद्भवस्यैवं फलान्यूह्यानि सूरिभिः ॥२६॥

मकर लग्न में उत्पन्न मनुष्य के मंगल, गुरु, चन्द्रमा पापफलप्रद, शुक्र शुभप्रद होते हैं। शनि मारक होने पर भी स्वयं नहीं मारता है। मंगल, गुरु, चन्द्रमा मारक होते हैं। केवल शुक्र सुयोग कारक होते हैं ॥

कुम्भ लग्न में उत्पन्न मनुष्य के शुभाशुभ ग्रह—

जीवचन्द्रकुजाः पापा एको दैत्यगुरुः शुभः ।
राजयोगकरो ज्ञेयः कविरेव बृहस्पतिः ॥ २७ ॥
चन्द्रो भौमश्च हन्तारो मारकत्वेन लक्षिताः ।
कुम्भलग्नोद्भवस्यैवं फलान्यूह्यानि पंडितैः ॥ २८ ॥

कुम्भ लग्न में जन्म लेने वालों के गुरु, चन्द्र, मंगल पाप फलप्रद, केवल शुक्र राजयोग कारक होते हैं। गुरु, चन्द्र, मंगल ये मारक होते हैं।

मीन लग्न में जन्म लेने वालों के शुभाशुभ ग्रह—

मन्दशुक्रांशुमत्सौम्याः पापा भौम-विधू शुभौ ।
महीसुत-गुरू योगकारकौ च महीसुतः ॥ २९ ॥

मारकेशो न हन्ता स्यान्मन्द-ज्ञौ मारकौ स्मृतौ ।
मीनलग्नोद्भवस्यैवं फलानि परिचिन्तयेत् ॥ ३० ॥

मीन लग्न में जन्म लेने वालों के शनि, शुक्र, रवि, बुध ये पापग्रह, मंगल चन्द्रमा शुभ होते हैं। मंगल और गुरु ये राजयोगकारक होते हैं। मंगल मारकेश होकर भी नहीं मारता है। शनि और बुध मारक होते हैं ॥ २९-३० ॥

मारक ग्रह की विशेषता—

एतच्छास्त्रानुसारेण मारका निर्दिशेद् बुधः ।
चन्द्र-सूर्यौ विना सर्वे मारका मारकाधिपाः ॥ ३१ ॥
स्वदशायां स्वभुक्तौ च न्राणां निधनं नहि ।
कुभुक्तौ च समीच्छन्ति सुभुक्तौ न कदाचन ॥ ३२ ॥

इसके अनुसार मारक ग्रहों का निर्णय करना चाहिये। सूर्य, चन्द्रमा को छोड़कर अन्य सब ग्रह मारकेश होने पर मारक होते हैं। मारक ग्रह अपनी दशा और अपनी अन्तर दशा में नहीं मारता। पापफलप्रद ग्रहों की अन्तर्दशा में ही मारता है। शुभप्रद ग्रह की अन्तर्दशा में नहीं मारता है ॥ ३१-३२ ॥

इति शुभाऽशुभदशाफलाध्यायः ॥ ८ ॥

अथ भावविचाराध्यायः ॥ ९ ॥

मूर्तिमायुश्च कीर्तिञ्च साङ्गोपाङ्गं निरूपयेत् ।
स्थितिं स्वरूपं सम्पत्तिं जन्मलग्नाद्विचिन्तयेत् ॥ १ ॥
धनं सुखं च भुक्तिं च सत्यं वाक्पटुतामपि ।
सव्यनेत्रफलं चैवं धनभावाद् विचिन्तयेत् ॥ २ ॥

लग्न से शरीर, आयु, कीर्ति, स्थिति, स्वरूप और सम्पत्ति का साङ्गोपाङ्ग विचार करना चाहिये। द्वितीय भाव से धन, सुख, भोग, सत्यता, वाक्पटुता और दक्षिण नेत्रका शुभाशुभ विचार करना चाहिये।

सहजं विक्रमं कण्ठं क्षुधामाभरणानि च ।
पात्राऽपात्रफलं भावात् तृतीयात् परिचिन्तयेत् ॥ ३ ॥

तृतीयभाव से सहोदर, पराक्रम, कण्ठ, क्षुधा, आभरण और पात्रता अपात्रता का विचार करना चाहिये ॥ ३ ॥

मातरं वाहनं बन्धुं सुखं सिंहासनं गृहम् ।
मित्रं बाहुं ध्रुवं भावाच्चतुर्थात् परिचिन्तयेत् ॥ ४ ॥

चतुर्थ भाव से माता, बन्धु, गृह, सुख आदिका विचार करना चाहिये ।

पुत्रं बुद्धिं मन्त्रं च देवताभक्तिमुत्तमाम् ।
हृदयं मातुलं भावात् पञ्चमात् परिचिन्तयेत् ॥ ५ ॥

पञ्चम भाव से पुत्र, बुद्धि, मन्त्र, देवता की भक्ति आदि का विचार करना चाहिये ॥ ५ ॥

रिपुं ज्ञातिं बलं रोगमुदरं शत्रुमेव च ।
पृष्ठस्थानफलं स्थानात् षष्ठमात् परिचिन्तयेत् ॥ ६ ॥

षष्ठ भावसे शत्रु, गोतिया, बल, रोग आदि का विचार करना चाहिये ।

कलत्रभोगं छत्रं दन्तनाभी च सप्तमात् ।
गुदं मरणकञ्चैवमायुःस्थानाद् विचिन्तयेत् ॥ ७ ॥

सप्तम भाव से स्त्री सम्भोग, छत्र, दन्त और नाभि का एवं अष्टम-स्थान से गुद मार्ग और मरण का विचार करना चाहिये ॥ ७ ॥

भाग्यं तीर्थं च धर्मं च तपःस्थानादिति क्रमात् ।
मानं राज्यं कर्म कीर्तिं व्यापारं दशमात् तथा ॥ ८ ॥

नवमभाव से भाग्य, तीर्थ, दशम से राज्य, कर्म, कीर्ति और व्यापार, मान आदि का विचार करे ॥ ८ ॥

लाभं चैवाग्रजं कर्णं जङ्घामेकादशात् ।
व्ययं पितृधनं वादं वामनेत्रं व्ययात् तथा ॥ ९ ॥

एकादश भाव से लाभ, ज्येष्ठ भाई, कर्ण आदि का, तथा व्यय भाव से खर्च, पैतृक सम्पत्ति, वाद और वामनेत्र का विचार करना चाहिए ।।९।।

सजल और निर्जल राशियाँ

कुम्भ-कर्कट-गो-मीन मकरा-ऽलि-तुलाधराः ।
सजला राशयः प्रोक्ता निर्जलाः शेषराशयः ।।१०।।

कुम्भ, कर्क, वृक्ष, मीन, मकर, वृश्चिक, तुला ये जलराशि और शेषराशि निर्जल है ।।१०।।

आग्नेय और आप्यग्रह-

रविभौमार्कजाः शौक्राः सजलौ चन्द्रभार्गवौ ।
बुधवाचस्पती ज्ञेयौ सजलौ जलराशिगौ ।।११।।

रवि, मंगल, शनि ये शौक्र (आग्नेय) और चन्द्र, शुक्र सजल तथा बुध और गुरु ये दोनों जलराशि में हो तो सजल और अन्य राशि में हो तो आग्नेय ग्रह कहाते हैं ।।११।।

रामाङ्कवमुभूतुल्ये शकवर्षे विनिर्मिता ।
मध्यपाराशरीटीका श्री सीतारामशर्मणा ।।

इति सटीकमध्यपाराशरी समाप्त।

शुभम्

स्व० प्रकाशित ग्रन्थरत्नानि